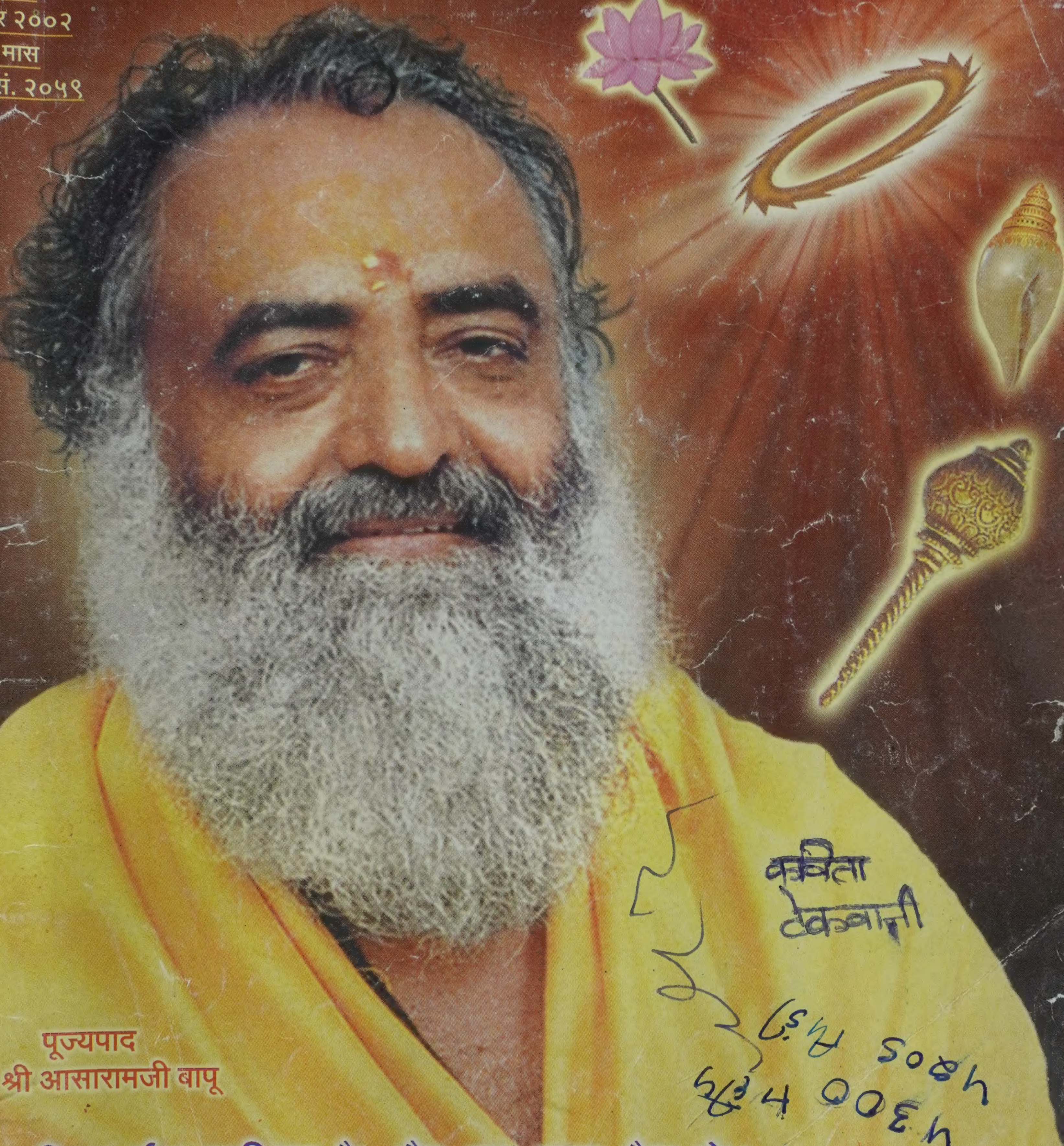
संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

ऋषि प्रसाद

हिन्दी

३
१७
र २००२
मास
सं. २०५९

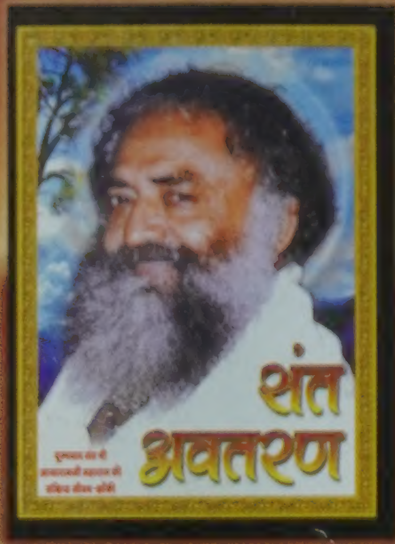


पूज्यपाद
श्री आसारामजी बापू

ह विश्व ईश वाटिका है, सैर कर सुख चैन से।
मत फूल पत्ता तोड़ कुछ भी, देख केवल नैन से॥
ब कर्म कर जगदीश हित, मत राख फल पर ध्यान रे।
यह भक्ति है, यह योग है, यह ही कहाता ज्ञान रे॥

आश्रम के दो नये प्रकाशन : 'भगदन्नाम जप-महिमा' और 'श्रीकृष्ण जन्माष्टमी'







ईश्वर प्राप्ति के मार्ग को
सुगम बनानेवाला,
सुखी-स्वस्थ और सम्मानित
जीवन की कुंजियाँ
बतानेवाला पूज्यश्री का
प्रेरणादायी सत्साहित्य
अवश्य पढ़ें।

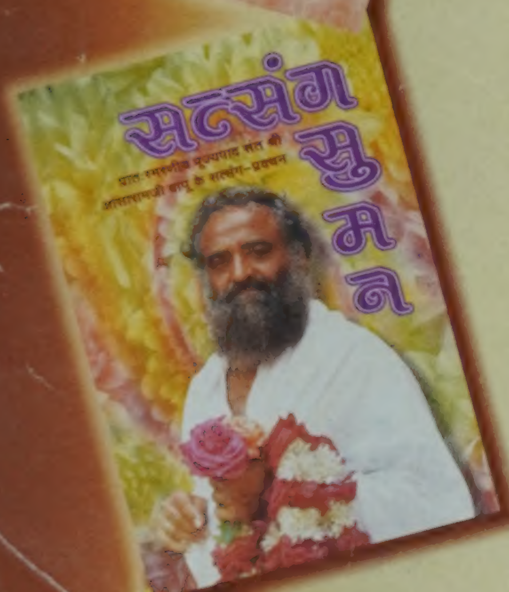




१० पुस्तकों का मूल्य
डाकखर्च सहित : मात्र रु. १००/-

६७ हिन्दी पुस्तकों का मूल्य
डाकखर्च सहित : मात्र रु. ४६०/-

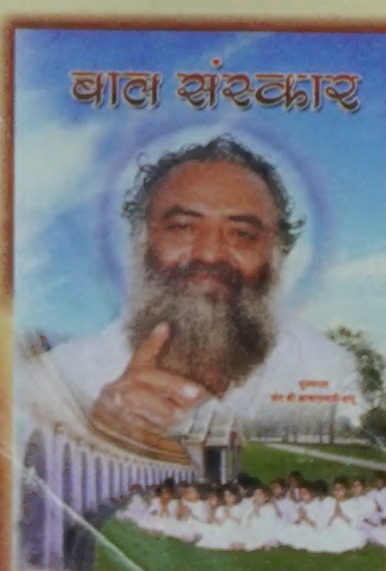
मनीऑर्डर/डी.डी. भेजकर रजिस्टर्ड
पोस्ट पार्सल से भी प्राप्त कर सकते हैं।

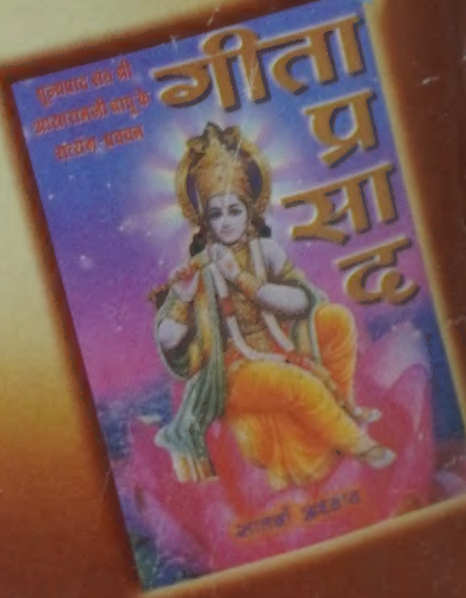




✻ सत्साहित्य विभाग ✻
संत श्री आसारामजी आश्रम,
साबरमती, अमदावाद-५.







॥ ऋषि प्रसाद ॥

वर्ष : १३
अंक : ११७
९ सितम्बर २००२
भाद्रपद मास, विक्रम संवत् २०५९
सम्पादक : कौशिक वाणी
सहसम्पादक : प्रे. खो. मकवाणा
मूल्य : रु. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रु. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रु. २००/-
(३) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रु. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रु. ३००/-
(३) आजीवन : रु. ७५०/-

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 20
(२) पंचवार्षिक : US $ 80
(३) आजीवन : US $ 200

कार्यालय **'ऋषि प्रसाद'**
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.
e-mail : ashramamd@ashram.org
web-site : www.ashram.org

प्रकाशक और मुद्रक : कौशिक वाणी
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-५ ने पारिजात प्रिन्टरी, राणीप और विनय प्रिन्टिंग प्रेस, अमदावाद में छपाकर प्रकाशित किया।

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

अनुक्रम

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग

SONY चैनल पर 'संत आसारामवाणी' सोमवार से शुक्रवार सुबह ७.३० से ८ व शनिवार और रविवार सुबह ७.०० से ७.३०
संस्कार चैनल पर 'परम पूज्य लोकसंत श्री आसारामजी बापू की अमृतवर्षा' रोज दोप. २.०० से २.३० तथा रात्रि १०.०० से १०.३०
'संकीर्तन' सोमवार तथा बुधवार सुबह ९.३० और मंगल तथा गुरुवार शाम ५.०० बजे

काव्यगुंजन

गुरु से प्रार्थना

क्या तुमसे विनती करूँ, तुम सब जग जाननहार।
अब चरण शरण देय के, प्रभु कर दो भवजल पार।।
जग छल अब भाये नहीं, मन प्रभु चरणों लों चोंट।
प्रभु शरण लो आपणी, हृदय विसार मेरे खोट।।
मैं मानूँ प्रभु तुम हरि, और न जानूँ कोय।
तुम तज कोई गति नहीं, अब जा विधि राखो मोय।।
सब जग तुमको याद है, क्यों मेरी सुध नहीं लीन।
जगनिधि सब पाय के, मैं प्रभुकृपा बिन हीन।।
और कछु नहीं चाहिए, वर दो प्रभु ! बस तीन।
एक भक्ति श्रीचरणों की, दूसर शक्ति एकाग्र।
तीजे से माँगू प्रभु ! बस हरि नाम अनुराग।।

– ऊषा, दिल्ली।

*

हैं धन्य श्री गुरुदेवजी...

हीरा समझ कर कांच को, लेने उसे दौड़ा किया।
आशा घनी करता हुआ, भवजाल में है फँस गया।।
ज्यों-ज्यों अधिक आशा करूँ त्यों-त्यों अधिक होता दुःखी।
हैं धन्य श्री गुरुदेवजी, उपदेश दे कीन्हा सुखी।।
सच्चा जगत था जानता, पावन अपावन मानता।
'संबंध सारे हैं मृषा' फिर भी उन्हें सच जानता।।
सच मानकर होता दुखी, चिल्लाय था घबराय था।
हैं धन्य श्री गुरुदेव जिन, बतला दिया जो हेय था।।
'मैं' सर्व में है भर रहा 'तू' का कहीं नहीं है पता।
कहते सभी 'मैं' आपको, कोई न 'तू' है मानता।।
तू था नहीं ! फिर भी मुझे, तू दुःख देता था महा।
हैं धन्य श्री गुरुदेवजी, अब दुःख सब जाता रहा।।

– श्री भोले बाबा

तत्त्व दर्शन

अपनी खबर

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

जब हम रात्रि को स्वप्न देखते हैं तो बड़ा विशाल दिखता है। जिसकी सत्ता से रात को स्वप्न दिखता है उसका पता नहीं होता इसीलिए स्वप्न बड़ा दिखता है। उठते हैं तब पता चलता है कि कुछ भी नहीं था, केवल स्वप्न था।

सिनेमागृह में बैठे होते हैं तो पर्दे का जगत बहुत बड़ा लगता है। वहाँसे बाहर आ जाते हैं तो पर्दे के चित्र क्या कीमत रखते हैं ?

धरती पर कोई बंगला बड़ा विशाल दिखता है किंतु हवाईजहाज में यात्रा करते हैं तो उस बंगले का अस्तित्व ही नजर नहीं आता।

वर्षों पूर्व की बात है - हम एक बार मोटेरा आश्रम (अमदावाद) से १६-१७ कि.मी. दूर वासणा बाँध देखने गये तो नाव से जाने में २ घंटे ४० मिनट लगे। पानी का बहाव बड़ा तेज था। जाने में बड़ा परिश्रम लगा। फिर जब हवाईजहाज में बैठकर मुंबई जा रहे थे तब जहाज उठा और नजर नीचे पड़ी तो देखा कि नीचे वासणा बाँध है।

हलके साधनों से तो बाँध भी बड़ा लगता है, दूर लगता है। बढ़िया साधन से देखो तो कुछ दूरी नहीं। ऐसे ही जब मोह के वशीभूत होकर देखते हैं तो जगत का 'मेरा-तेरा' बड़ा दिखता है, जब अज्ञान से देखते हैं तो जगत सच्चा लगता है। परंतु आत्मविचार से देखें तो जगत अति तुच्छ भासता है और समाधि में देखें तो जगत की कोई गंध ही नहीं रहती। इसीलिए बड़े-बड़े सम्राटों ने राजपाट

छोड़ दिया उस आत्मराज्य को पाने के लिए, आत्मज्ञान पाने के लिए...

उस आत्मराज्य को पाये बिना और जो भी पाओगे सब छूट जायेगा । अपने आत्मदेव से मिलने के सिवा और किसीसे मिलोगे तो बिछुड़ जाओगे । अपने-आपको खोजे बिना किसी और को खोजोगे तो विक्षेप होगा । इसलिए अपने को खोजो कि 'मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? आखिर में कहाँ जाऊँगा ?'

अरे मूर्ख इंसान ! रात-दिन कहाँ भटक रहा है ? तूने क्या खोया है और इस जगत से तुझे क्या पाना है ? तेरा खजाना तेरे पास है तू अपने खजाने की ओर देख ।

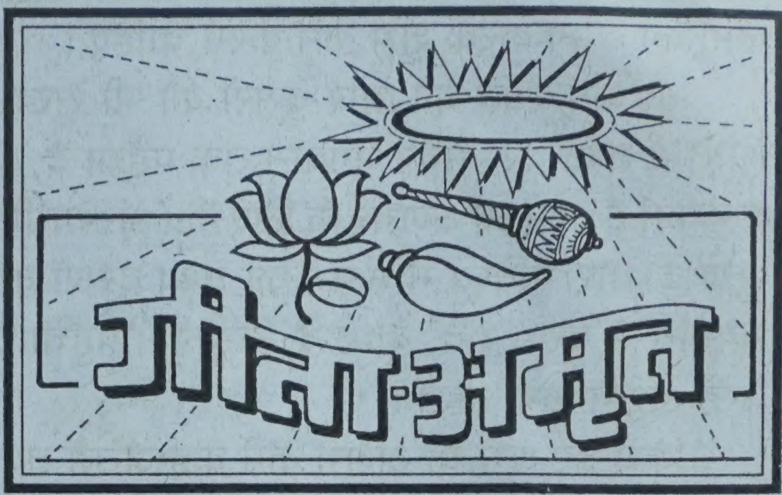
ऐ तालिबे मंजिल, मंजिल किधर देखता है ?
दिल ही तेरी मंजिल है, तू अपने दिल की ओर देख ।

मंजिल के ताले, सुख के ताले तू किधर ढूँढ़ता है ? तेरे दिल में सुख का दरिया लहरा रहा है, तू अपने दिल की ओर देख । बाहर की आँख बंद कर, भीतर की आँख खोल ।

अगर एक बार भी भीतर की आँख खुल गयी तो जगत मिथ्या लगने लगेगा । जैसे, रात्रि का स्वप्न स्वप्न के समय सत्य भासता है तथा आँख खुलते ही मिथ्या हो जाता है, ऐसे ही बाहर का जगत भी बाहर की आँखें खुली रहने पर सत्य भासता है परंतु भीतर की आँख से, ज्ञान की आँख से देखोगे तो जगत बदलनेवाला, मिथ्या-स्वप्नवत् हो जायेगा और अपने वास्तविक स्वरूप का दीदार हो जायेगा ।

जिनको अपने वास्तविक स्वरूप आत्मा-परमात्मा का दीदार हो गया, उनको फिर इच्छाएँ-वासनाएँ नहीं रहती । इच्छाएँ-वासनाएँ नहीं तो जन्म भी नहीं । वे मुक्त हो गये । उसी मुक्ति के तुम भी अधिकारी हो सकते हो ।

खोज लो ऐसे ही किन्हीं ब्रह्मवेत्ता को, चल पड़ो उनके बताये मार्ग पर... खोजो अपने आपको... फिर वह दिन दूर नहीं, जब मुक्ति तुम्हारी मुट्ठी में होगी । ॐ शांति... ॐ आनंद... ॐ माधुर्य... ॐ... ॐ... ॐ...



कर्म कैसे करें ?

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

'श्रीमद्भगवद्गीता' के तीसरे अध्याय 'कर्मयोग' में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं :

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ।।

'तू निरन्तर आसक्ति से रहित होकर सदा कर्त्तव्य कर्म को भली भाँति करता रह । क्योंकि आसक्ति से रहित होकर कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्मा को प्राप्त हो जाता है ।' **(गीता : ३.१९)**

मनुष्य जब अनासक्त होकर कर्म करता है, तब उसको परम सत्य की उपलब्धि होती है । परम सत्य क्या है ? - परमात्मा की प्राप्ति ।

गीता में परमात्म-प्राप्ति के तीन मार्ग बताये गये हैं : ज्ञानमार्ग, भक्तिमार्ग और कर्ममार्ग ।

शास्त्रों में मुख्यतः दो प्रकार के कर्मों का वर्णन किया गया है : विहित कर्म और निषिद्ध कर्म । जिन कर्मों को करने के लिए शास्त्रों में उपदेश किया गया है, उन्हें विहित कर्म कहते हैं और जिन कर्मों को करने के लिए शास्त्रों में मना किया गया है, उन्हें निषिद्ध कर्म कहते हैं ।

हनुमानजी ने श्रीराम के कार्य के लिए लंका जला दी । उनका यह कार्य विहित कार्य है, क्योंकि उन्होंने अपने स्वामी के सेवाकार्य के रूप में ही लंका जलायी । परंतु उनका अनुसरण करके लोग एक-दूसरे के घर जलाने लग जायें तो यह धर्म नहीं, अधर्म होगा, मनमानी होगी ।

हम जैसे-जैसे कर्म करते हैं, वैसे-ही-वैसे लोकों की हमें प्राप्ति होती है । इसलिए हमेशा अशुभ

कर्मों का त्याग करके शुभ कर्म करने चाहिए।

जो कर्म स्वयं को और दूसरों को भी सुख-शांति दें तथा देर-सवेर भगवान तक पहुँचा दें, वे शुभ कर्म हैं और जो क्षणभर के लिए ही (अस्थायी) सुख दें और भविष्य में अपने को तथा दूसरों को भगवान से दूर कर दें, कष्ट दें, नरकों में पहुँचा दें उन्हें अशुभ कर्म कहते हैं।

किये हुए शुभ या अशुभ कर्म कई जन्मों तक मनुष्य का पीछा नहीं छोड़ते। पूर्व जन्मों के कर्मों के जैसे संस्कार होते हैं, वैसे फल भोगने पड़ते हैं।

महाभारत में एक प्रसंग आता है :

जब भीष्म पितामह बाणों की शैया पर लेटे हुए थे, तब उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण से पूछा : ''हे केशव ! मैं जानता हूँ कि प्रत्येक प्राणी को अपने कर्मों का फल भुगतना ही पड़ता है। मैंने अपने पिछले ७२ जन्म देख लिये। उनमें मैंने ऐसा कोई पापकर्म नहीं किया था कि मुझे शरशैया पर सोना पड़े। अब आप ही बताइये कि इसका क्या कारण है ?''

श्रीकृष्ण ने कहा : ''पितामह ! आपने पिछले ७२ जन्म तो देख लिये, परंतु आप एक जन्म और पीछे जाते तो आप जान लेते कि उस जन्म में आपने एक कीड़े को शूल चुभाकर पीड़ा पहुँचायी थी। उसी पापकर्म का फल आपको इन असंख्य बाणों पर लेटकर भुगतना पड़ रहा है।''

गहना कर्मणो गति... कर्मों की गति बड़ी गहन होती है। कर्मों की स्वतंत्र सत्ता नहीं है। कर्म तो जड़ हैं। कर्मों को पता नहीं है कि 'मैं कर्म हूँ'। वे वृत्ति से प्रतीत होते हैं। जिस प्रकार के संस्कार होते हैं उसी प्रकार के कर्म प्रतीत होते हैं। यदि विहित संस्कार होते हैं तो पुण्य प्रतीत होता है और निषिद्ध संस्कार होते हैं तो पाप प्रतीत होता है। अतः विहित या शास्त्रोक्त कर्म करें। विहित कर्म भी नियंत्रित होने चाहिए। नियंत्रित विहित कर्म ही धर्म बन जाता है।

सुबह जल्दी उठकर थोड़ी देर के लिए परमात्मा के ध्यान में शांत हो जाना और सूर्योदय से पहले स्नान करना, संध्या-वंदन इत्यादि करना - ये कर्म स्वास्थ्य की दृष्टि से भी अच्छे हैं और सात्त्विक होने के कारण पुण्यमय भी हैं। परंतु किसी के मन में विपरीत संस्कार पड़े हैं तो वह सोचेगा कि 'इतनी सुबह उठकर स्नान करके क्या करूँगा ?' ऐसे लोग सूर्योदय के पश्चात् उठते हैं, उठते ही सबसे पहले बिस्तर पर चाय की माँग करते हैं और बिना स्नान किये ही नाश्ता कर लेते हैं - शास्त्रानुसार ये निषिद्ध कर्म हैं। ऐसे लोग वर्त्तमान में भले ही अपने को सुखी मान लें परंतु आगे चलकर शरीर अधिक रोग-शोकग्रस्त होगा। यदि सावधान नहीं रहे तो तमस के कारण नारकीय योनियों में जाना पड़ेगा।

भगवान श्रीकृष्ण ने 'गीता' में कहा भी है कि 'मुझे इन तीन लोकों में न तो कोई कर्त्तव्य है और न ही प्राप्त करने योग्य कोई वस्तु अप्राप्त है। फिर भी मैं कर्म में ही बरतता हूँ।'

इसलिए विहित और नियंत्रित कर्म करें। ऐसा नहीं कि शास्त्रों के अनुसार कर्म तो करते रहे किंतु उनका कोई अंत ही न हो ! कर्मों का इतना अधिक विस्तार न करें कि परमात्मा के लिए घड़ीभर भी समय न मिले। स्कूटर चालू करने के लिये व्यक्ति 'किक' लगाता है परंतु चालू होने के बाद भी वह 'किक' ही लगाता रहे तो उसके जैसा मूर्ख इस दुनिया में कोई नहीं होगा।

अतः कर्म तो करो परंतु लक्ष्य रखो केवल आत्मज्ञान पाने का, परमात्मसुख पाने का। अनासक्त होकर कर्म करो, साधना समझकर कर्म करो। ईश्वर परायण कर्म, कर्म होते हुए भी ईश्वर को पाने में सहयोगी बन जाता है।

आज आप किसी कार्यालय में काम करते हैं और वेतन लेते हैं तो वह है नौकरी, किंतु किसी धार्मिक संस्था में आप वही काम करते हैं, वेतन नहीं लेते तो आपका वही कर्म धर्म बन जाता है।

धर्म ते बिरती योग ते ग्याना... धर्म से वैराग्य उत्पन्न होता है। वैराग्य से मनुष्य की विषय-भोगों में फँस मरने की वृत्ति कम हो जाती है। अगर आपको संसार से वैराग्य उत्पन्न हो रहा है तो समझना कि आप धर्म के रास्ते पर हैं और अगर राग उत्पन्न हो रहा है तो समझना कि आप अधर्म के मार्ग पर हैं।

विहित कर्म से धर्म उत्पन्न होगा, धर्म से वैराग्य उत्पन्न होगा। पहले जो रागाकार वृत्ति आपको इधर-उधर भटका रही थी, वह शांतस्वरूप में आयेगी तो योग बन जायेगी। योग में वृत्ति एकदम

सूक्ष्म हो जायेगी तो बन जायेगी - ऋतम्भरा प्रज्ञा।

विहित संस्कार हों, वृत्ति सूक्ष्मतम हो और ब्रह्मवेत्ता सद्गुरुओं के वचनों में श्रद्धा हो तो ब्रह्म का साक्षात्कार करने में देर नहीं लगेगी।

संसारी विषय-भोगों को प्राप्त करने के लिए कितने भी निषिद्ध कर्म करके भोग भोगे, किंतु भोगने के बाद खिन्नता, बहिर्मुखता अथवा बीमारी के सिवा क्या हाथ लगा ? विहित कर्म करने से जो भगवत्सुख मिलता है वह अंतरात्मा को असीम सुख देनेवाला होता है।

जो कर्म होने चाहिए वे ब्रह्मवेत्ता की उपस्थिति मात्र से स्वयं ही होने लगते हैं और जो नहीं होने चाहिए वे कर्म अपने-आप छूट जाते हैं। परमात्मा की दी हुई कर्म करने की शक्ति का सदुपयोग करके परमात्मा को पानेवाले ब्रह्मज्ञानी समस्त कर्मबंधनों से मुक्त हो जाते हैं।

'गीता' में भगवान ने कहा भी है कि 'ब्रह्मज्ञानी महापुरुष का इस विश्व में न तो कर्म करने से कोई प्रयोजन रहता है और न कर्मों के न करने से ही कोई प्रयोजन रहता है। वे कर्म तो करते हैं परंतु कर्मबंधन से रहित हो जाते हैं।

एक ब्रह्मज्ञानी महापुरुष 'पंचदशी' पढ़ रहे थे। किसीने पूछा : ''बाबाजी ! आप तो ब्रह्मज्ञानी हैं, जीवन्मुक्त हैं फिर आपको शास्त्र पढ़ने की क्या आवश्यकता है ? आप तो अपनी आत्म-मस्ती में मस्त हैं फिर पंचदशी पढ़ने का क्या प्रयोजन है ?''

बाबाजी : ''मैं देख रहा हूँ कि शास्त्रों में मेरी महिमा का कैसा वर्णन किया गया है।''

अपनी करने की शक्ति का सदुपयोग करके जो ब्रह्मानंद को पा लेते हैं वे ब्रह्मवेत्ता महापुरुष ब्रह्म से अभिन्न हो जाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश उन्हें अपने ही स्वरूप दिखते हैं। वे ब्रह्मा होकर जगत की सृष्टि करते हैं, विष्णु होकर जगत का पालन करते हैं और रुद्र होकर संहार भी करते हैं।

आप भी अपनी करने की शक्ति का सदुपयोग करके उस अमर पद को पा लो। जो भी करो ईश्वर को पाने के लिए ही करो। अपनी अहंता-ममता को आत्मा-परमात्मा में मिलाकर परम प्रसाद में पावन होते जाओ...



✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

संतों की दृष्टि

मोकलपुर (उ.प्र.) में एक महाराज हो गये। उनके प्रति वहाँ के राजा की बड़ी श्रद्धा थी। राजा को जब पुत्र हुआ तो उसे उन्होंने मोकलपुर के महाराज की ही कृपा माना। राजा ने पुत्र-जन्म की खुशी में नृत्य-गान का आयोजन किया, जिसमें महाराज को भी सादर आमंत्रित किया।

नृत्य देखकर महाराज ने आदेश दिया : ''दे दो नर्तकी को १००० रुपये (उस समय के १००० रुपये अर्थात् आज का १० तोला सोना)।''

नर्तकी को लगा कि 'मेरे लिए तो ये बाबा बढ़िया ग्राहक हैं।' वह इधर-उधर जरा-सी थिरकती, फिर बार-बार बाबा के पास ही पहुँच जाती।

बाबा ने कहा : ''दे दो १००० रुपये।''

दो-चार बार इस प्रकार होने पर राजा ने मोकलपुर के महाराज से प्रार्थना की :

''महाराज ! आप कहेंगे तो हम और जगह पर पैसे लगा देंगे। बार-बार इस नखरेवाली को रुपये दिलवाते हैं यह अच्छा नहीं लगता।''

मोकलपुर के महाराज उठकर चल दिये। राजा ने काफी आग्रह किया रुकने का किंतु वे न रुके। महाराज के चले जाने पर राजा बड़े उदास रहने लगे। उन्हें चिंता के रोग ने पकड़ लिया। बहुत इलाज कराने पर भी वे स्वस्थ न हो सके। तब किसी समझदार व्यक्ति ने कहा :

''राजन् ! आप उन्हीं, मोकलपुर के महाराज

के पास जाइये। उन्हीं को रिझाइये।''

राजा मोकलपुर के महाराज के पास गये और क्षमायाचना करने लगे। महाराज ने कहा :

''राजन्! तुम समझते थे कि वह औरत अच्छी नहीं है, किंतु हम समझते थे कि वह ईश्वर की आह्लादिनी शक्ति साक्षात् जगदंबा है। हमें तो उसमें भी अपना चैतन्य ही नृत्य करता नजर आ रहा था। अब पुनः उसीको बुलाकर नृत्य करवाओ और जगदंबा मानकर उसका पूजन करो, तभी तुम ठीक हो पाओगे।''

महापुरुष नर्तकी में भी जगदंबा को देख सकते हैं तो हम यदि संतों में, माता-पिता में भगवद्भाव करें तो हमारा कितना कल्याण हो जाय।

आपका बहुत कुछ विकास आपकी दृष्टि, आपकी भावना में छुपा है। जैसी आपकी दृष्टि होगी वैसी ही आपके मन की सृष्टि होगी। इसलिए दृष्टि को शुभ बनाते जायें और शुभ के निकट की यात्रा करते जायें।

*

खुदा के हाथ में अंगूठी पहना दो...

हिन्दुओं में 'वेदान्त दर्शन' है तो मुसलमानों में 'सूफीवाद'। अपने वेदान्त दर्शन से निकली हुई एक शाखा ही 'सूफीवाद' है।

एक सूफी फकीर थे। उन्होंने देखा कि लोग धार्मिक तो हैं, नमाज भी पढ़ते हैं फिर भी अभी तक धर्म के अमृत का पान नहीं किया।

एक दिन उन्होंने बाजार में जाकर आवाज लगायी :

''रमजान का महीना है। खुदा के हाथ में अंगूठी पहना दो। खुदा को एक जोड़ी कपड़े पहना दो।''

लोग तो यह सुनकर बड़े खुश हो गये कि 'खुदा को कपड़े पहनाने का अवसर मिलेगा।' कुछ लोगों ने अंगूठी, कपड़े आदि बनवाये और पूछा उन फकीर से : ''आप जाने-माने फकीर हैं। आपकी बात गलत नहीं हो सकती। अतः आप ही बताइये कि खुदा कहाँ है ? ताकि हम उन्हें वस्त्र और अंगूठी पहना सकें।''

सूफी फकीर अपना हाथ आगे करते हुए बोले : ''यही है खुदा का हाथ। इसमें ही अंगूठी पहना दो।''

लोग बोल उठे : ''ऐ काफिर कहीं के! मुसलमान फकीर होकर ऐसा बोलता है कि यह खुदा का हाथ है ?''

फकीर सुलझे हुए थे। उन्होंने कहा :

''तुम लोगों ने रोजा रखा है। नेक इन्सान हो। अतः बताओ कि यह मकान और दौलत तुम्हारी है क्या ?''

''नहीं, खुदा की है।''

''ये बच्चे तुम्हारे हैं क्या ?''

''नहीं, खुदा के ही हैं।''

''यह शरीर तुम्हारा है ? तुमने बनाया है ?''

''नहीं, खुदा ने बनाया है।''

''...तो यह किसकी अमानत हुई ?''

''खुदा की।''

''अच्छा ! तो तुम्हारे शरीर खुदा के हैं कि नहीं ?''

''खुदा के ही हैं।''

''अरे, भाइयो ! यही तो मैं कह रहा हूँ। मेरा हाथ खुदा का ही हाथ है। इसमें पहना दो अंगूठी।''

फकीर ने आगे कहा :

''तुम लोग धार्मिक तो हो किंतु अज्ञानी धार्मिक हो। केवल यह बताने के लिए ही मैंने यह प्रयोग किया था। बाकी मुझे अंगूठी से क्या लेना-देना ?''

कुछ कट्टर मजहबवादी लोगों ने अपने जटिल स्वभाव के कारण उन फ़कीर में दोष देखे और उनके निंदक बन गये तथा अपना भविष्य अंधकारमय बनाने लगे। परंतु वर्तमान तथा भविष्य को उत्तम बनानेवाले समझदार तथा सज्जन लोग आत्मज्ञान के रास्ते चल पड़े।

धनभागी हैं वे लोग जो संतों को समझ पाते हैं, उनके साधना-संकेतों के अनुसार चल पाते हैं।

*

थालियाँ और गालियाँ

एक बार महात्मा बुद्ध किसी गाँव से होकर गुजर रहे थे। गाँव के कुछ लोग उनके निकट आये और उन्हें भाँति-भाँति की गालियाँ देने लगे, अश्लील अपशब्द कहकर उनका अपमान करने लगे। जब वे गालियाँ दे चुके तब बुद्ध ने उनसे कहा :

''अगर आप लोगों की बात समाप्त हो गयी हो तो मैं जाऊँ। मुझे दूसरे गाँव जल्दी पहुँचना है।''

बुद्ध की बात सुनकर लोगों के आश्चर्य की सीमा न रही ! वे बोले :

''हमने बात तो कुछ कही नहीं, सिर्फ गंदी-गंदी गालियाँ ही दी हैं, फिर भी आप दुःखी नहीं हुए। बदले में हमारी गालियों का उत्तर तो दिया होता या कुछ तो कहा होता ?''

बुद्ध ने कहा : ''यदि आप लोग आज से दस वर्ष पूर्व आये होते तो मैं गालियों का उत्तर गालियों से देता। उस समय मुझे अपने अपमान का दुःख होता था। परंतु इधर दस वर्षों से मैं दर्शक ही हो गया हूँ। अब आप लोगों के साथ भी वही करूँगा जो मैंने पिछले गाँव में किया था।''

उन लोगों ने जिज्ञासावश पूछा : ''वहाँ आपने क्या किया था ?''

बुद्ध ने बतलाया : ''पिछले गाँव में कुछ लोग फल-फूल व मिठाइयों से भरी हुई थालियाँ मुझे भेंट करने आये थे। मैंने उनसे कहा कि मेरा पेट भरा हुआ है, इसलिए मुझे क्षमा करो। वे मेरे ऐसा कहने पर थालियों को वापस ले गये। अब आप लोग गालियाँ लेकर आये हो, अतः इन्हें वापस ले जाने के सिवाय आप लोगों के पास और कोई उपाय नहीं है। उस गाँव के लोग तो फल-मिठाइयाँ वापस ले गये थे और उन्होंने वह सब बच्चों में बाँट दिया होगा। अब इन गालियों को आप लोग किसको बाँटोगे ? क्योंकि मैं तो इन्हें लेने से इन्कार कर रहा हूँ।''

वे सब लोग एक दूसरे का मुँह ताकते रह गये और बुद्ध अपने मार्ग पर आगे चल दिये।

*

है कोई गुलाम, स्वामी को खरीदनेवाला !

जापान में एकांत अरण्य में विचरनेवाले बोकोजु नाम के एक मस्त फकीर थे। किसी गिरोह के लोगों ने उन्हें घेर लिया। रस्से से बाँधकर उन्हें बेचने ले जाना चाहते थे। बोकोजु ने कहा :

''रस्से से बाँधने की कोशिश क्यों करते हो ? जहाँ बोलो वहाँ हम चलते हैं।''

चलते-चलते उस ठिकाने पर पहुँचे जहाँ गुलाम को खड़ा करके बोली लगायी जाती है। गिरोह के लोग बोले :

''इस गुलाम की बोली लगाओ, है कोई खरीददार ?''

यह सुनकर बोकोजु ने कहा : ''कोई गुलाम बोली लगाये, है कोई गुलाम, इस स्वामी को खरीदनेवाला ?''

तब किसीने कहा : ''तुम स्वामी कहाँ के ? तुमको तो ये लोग बेचने आये हैं।''

बोकोजु बोले : ''इन्हींसे पूछ लो कि मैं इनके पीछे-पीछे आया हूँ कि ये मेरे पीछे-पीछे आये हैं ? मैं इनके पीछे नहीं आया वरन् ये ही मेरी सुरक्षा करते हुए मेरे पीछे-पीछे आये हैं।

जिसको वासना होती है वही पीछे-पीछे आता है। जिसको कुछ पाना है वही गिड़गिड़ाता है। मुझे कुछ पाना नहीं है। मेरी कोई चाह भी नहीं है। मैंने अपने को ज्यों-का-त्यों जाना है। मैं तो सम्राट हूँ, शहंशाह हूँ। जहाँ भी चाहो, मुझे ले जाओ। किंतु किसकी ताकत है मुझे गुलाम बनाने की ? वासना ही आदमी को गुलाम बनाती है।''

बोकोजु की निर्भय वाणी सुनकर अपहरणकर्त्ताओं को हुआ कि कौन खरीद सकता है इस फकीर को ? इनसे तो क्षमा माँगने में ही हमारा कल्याण है। आखिर वे लोग बोले :

''बाबा ! हम ही हार गये।''

बोकोजु अपनी आत्ममस्ती में वहाँसे चल पड़े।

समता के विचार से चित्त जल्दी वश में होता है, हठ से नहीं।



अलख पुरुष की आरसी...

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

संत कबीर से किसीने पूछा :

''हम निर्गुण-निराकार परमात्मा को तो नहीं देख सकते, फिर भी देखे बिना न रह जायें ऐसा कोई उपाय बताइये।''

कबीरजी ने कहा :

अलख पुरुष की आरसी, साधु का ही देह।
लखा जो चाहे अलख को, इन्हीं में तू लख लेह॥

''परमात्मा को देखने के लिए ये चर्मचक्षु काम नहीं आते। फिर भी यदि तुम परमात्मा को देखना ही चाहते हो तो जिनके हृदय में परमात्माकार वृत्ति प्रकट हुई है, जिनके हृदय में समतारूपी परमात्मा प्रकट हुए हैं, जिनके हृदय में अद्वैतज्ञानरूपी परमात्मा प्रकट हुए हैं, ऐसे हृदयवाले किन्हीं महापुरुष को तुम देख सकते हो। उनको देखते ही तुम्हें परमात्मा की याद आ जायेगी। जिनके दिलों में ईश्वर निरावरण हुआ है, ऐसे संत-महापुरुषों को तुम देख सकते हो।''

साधु की देह एक ऐसा दर्पण है, जिसमें तुम उस अलख पुरुष परमात्मा के दर्शन कर सकते हो। अतः यदि अलख पुरुष को देखना चाहते हो तो ऐसे किन्हीं परमात्मा के प्यारे संतों के दर्शन करने चाहिए।

शुद्ध हृदय से, ईमानदारी से उन महापुरुषों का चिंतन करके हृदय को धन्यवाद से भरते जाओगे तो तुम्हारे हृदय में परमात्मा को प्रकट होने में देर नहीं लगेगी। परमात्म-प्राप्ति इतनी सरल होने पर भी लोग उसका फायदा तो नहीं उठाते हैं, वरन् संतों के बाह्य-व्यवहार को देखकर अपनी क्षुद्र मति से उन्हें तौलने लगते हैं और अपनी ही हानि कर बैठते हैं।

वशिष्ठजी महाराज भी कहते हैं कि 'शास्त्रकर्त्ता का और लक्षण न विचारना, पर शास्त्र की युक्ति विचार देखनी है। अज्ञानी जो कुछ मुझे कहते और हँसते हैं, सो मैं सब जानता हूँ, परंतु मेरा दया का स्वभाव है इससे मैं चाहता हूँ कि किसी प्रकार वे नरकरूप संसार से निकलें। इसी कारण मैं उपदेश करता हूँ।'

जिनके श्रीचरणों में अयोध्यानरेश दशरथ शीश नवाकर अपने को सौभाग्यशाली मानते हैं और श्रीराम जिनके शिष्य हैं, ऐसे गुरुवर वशिष्ठजी के लिए भी कहनेवालों ने क्या-क्या नहीं कहा ? अतः यदि कोई तुम्हारे लिए भी कुछ कह दे तो चिंता मत करना वरन् उसे धन्यवाद देना।

डॉ. राजेन्द्रप्रसाद भारत के प्रथम राष्ट्रपति बने। उस समय किसी विकृत मानसिकतावाले ने एक सस्ते अखबार में उनके विषय में कुछ-का-कुछ छपवाना शुरू कर दिया कि 'वे ऐसे हैं, वैसे हैं...।' जो कुछ भी कचरा उसके मस्तिष्क से निकलता, उसे कलम द्वारा अखबार में छपवाता और यदि कोई अखबार न भी लेना चाहे तो उसे जबरदस्ती पकड़ाता, मुफ्त में बँटवाता।

डॉ. राजेन्द्रप्रसाद के किसी प्रशंसक ने उन्हें वह अखबार दिखाया, राजेन्द्रप्रसाद ने उसे फाड़कर फेंक दिया। दूसरा कोई व्यक्ति भी वह अखबार लेकर आया तो उन्होंने उसे भी कचरापेटी में डाल दिया। वह निंदक कुप्रचार करता ही रहा। आखिर राजेन्द्रप्रसाद के कुछ मित्रों ने कहा :

''यह व्यक्ति आपके विरुद्ध इतना कुछ लिख रहा है और आप कुछ नहीं करते ! अब तो आप राष्ट्रपति हैं, आपके पास क्या नहीं है ? आप चाहें तो उसके विरुद्ध कोई भी कदम उठा सकते हैं। आप उसे कुछ तो कहें, कुछ तो समझायें। न समझे तो फटकारें, परंतु कुछ तो करें।''

डॉ. राजेन्द्रप्रसाद मुस्कराते हुए बोले :

''वह मेरी बराबरी का होता तो मैं उसे जवाब देता । जो विकृत मस्तिष्कवाले होते हैं, उनके शत्रुओं की कमी नहीं होती । कभी उसकी मति भी ऐसी हो जायेगी कि उसे दूसरा कोई शत्रु मिल जायेगा और वे आपस में ही लड़ मरेंगे । लोहे से लोहा कट जायेगा ।''

उन लोगों ने फिर कहा : ''परंतु वह आपके लिए इतना सारा लिखता रहता है, आपको कुछ तो जवाब देना ही चाहिए ।''

डॉ. राजेन्द्रप्रसाद : ''इसकी कोई जरूरत नहीं है ।''

राजेन्द्रप्रसाद पर तो उस निंदक के कार्यों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, किंतु उनके परिचित और मित्र परेशान हो उठे । अतः पुनः बोले :

''हम आपके पास आते-जाते रहते हैं और आपकी बदनामी हो रही है तो उसका प्रभाव हमारे संबंधों पर भी पड़ रहा है । हमें भी लोग जैसा चाहे सुना देते हैं, अतः आपको कुछ तो करना ही चाहिए ।''

तब राजेन्द्रप्रसाद ने एक दृष्टांत देते हुए कहा :

''एक हाथी जा रहा था । उसके पीछे कुत्ते भौंकने लगे परंतु हाथी अपनी ही मस्ती में चलता रहा । हाथी हाथी से टक्कर ले तो अलग बात है । यदि हाथी कुत्तों को समझाने या चुप कराने लगे तो इसका अर्थ यह होगा कि वह कुत्तों के साथ अपनी तुलना करने लगा है और अपनी महिमा भूल गया है ! हाथी की अपनी महिमा है ।''

कबीरजी ने कहा है :

हाथी चलत है अपनी चाल में,
कुतिया भूँके वा को भूँकन दे ।
मन ! तू राम सुमिरकर, जग बकवा दे ।।

अपनी महिमा में मस्त रहनेवाले संत-महापुरुषों पर लोगों की अच्छी-बुरी बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता । जो संतों का आदर-पूजन और सेवा करता है, वह अपना भाग्य बना लेता है तथा संतों के दैवी अनुभव में भी भागीदार हो जाता है । परंतु जो संतों की निंदा करता है, संतों को सताता है वह अपने भाग्य पर कुठाराघात करता है । संतों की नजर में तो कोई अच्छा-कोई बुरा, कोई काला-कोई गोरा, कोई माई-कोई भाई... ऐसा नहीं होता । संतों की नजर में तो केवल '**एकमेवाद्वितीयोऽहम् ।**' होता है ।

उनके प्रति जिसकी जैसी भावना, जैसी दृष्टि, जैसा प्रेम होता है, वैसा ही उसे हानि-लाभ होता है ।

करनी आपो आपनी, के नेड़े के दूर ।

अपने ही कर्मों से, अपने ही भावों से आप अपने-आपको सद्गुरु और संतों के निकट अनुभव करते हो तथा अपने ही कर्मों और भावों से उनसे दूरी का अनुभव करते हो । संतों के हृदय में तो कोई अपना या पराया नहीं होता । आजकल का, कलियुग का अल्प मतिवाला मानव बुरी बातों को बहुत जल्दी स्वीकार कर लेता है, किंतु अच्छी बातों को स्वीकार नहीं करता । सच्चाई फैलाने में तो जीवन पूरा हो जाता है पर कुछ गड़बड़ फैलानी हो तो फटाफट फैल जाती है । लोग तुरंत ही कुप्रचार के शिकार हो जाते हैं क्योंकि उनकी अल्पमति है । उनकी विचारशक्ति कुंठित हो गयी है ।

नरसिंह मेहता गुजरात के प्रसिद्ध संत हो गये । उनके लिए भी ईर्ष्यालु लोगों ने कई बार खूब अफवाहें फैलायी थीं । अफवाह फैलानेवाले, व्यर्थ के आरोप लगानेवाले, छापने-छपानेवाले किस नरक में पचते होंगे ? किस माता के गर्भ में लटकते होंगे ? वह हम और आप नहीं जानते, परंतु नरसिंह मेहता को तो आज भी हजारों-लाखों लोग जानते-मानते हैं और उनका नाम बड़े आदर व प्रेम से लेते हैं ।

नरसिंह मेहता श्रीकृष्ण के परम भक्त थे । वे प्रभुपद गाते-गाते इतने भावविभोर हो उठते कि अपने-आपको ही भूल जाते थे ! नरसिंह मेहता जब नरसिंहपना छोड़ देते तो श्रीकृष्ण अपना कृष्णपना कैसे रख सकते थे ? जब पुत्र अपना पुत्रपना भूलकर प्रेम से पिता के साथ बातें करने लगता है तो पिता भी पिताभाव कैसे रख सकता है ? पिता भी पुत्र के साथ तोतली भाषा बोलने लग जाता है ।

नरसिंह मेहता श्रीकृष्ण का चिंतन करते-करते इतने तन्मय हो जाते थे कि जो लोग उनके दर्शन करने आते, वे भी धन्य हो उठते ! कृतार्थ हो उठते ! वे लोग भी उनके साथ नाचने और झूमने लग जाते, कृष्ण-कन्हैया के भाव में आ जाते।

ऐसे नरसिंह मेहता के विषय में भी जब व्यर्थ के आरोप लगे, अफवाहें फैलने लगीं, तब कुछ भक्तों की मति भी कुप्रचार के कारण डाँवाडोल हो गयी और कुछ लोग तो कुप्रचार के शिकार होकर वहाँसे खिसक भी गये। निंदक कहने लगे कि 'यदि नरसिंह मेहता में सच्चाई हो तो साबित करके दिखायें।' परंतु नरसिंह मेहता के लिए फैलायी गयी अफवाहें हर बार गलत ही साबित हुई। उनकी दृढ़ भक्ति के कारण चमत्कार होते तो चमत्कार के प्रेमी उनके आस-पास एकत्रित होते रहते। वे चमत्कार के भक्त थे, नरसिंह मेहता के भक्त नहीं थे।

ऐसा कई संतों के साथ होता है। जब तक सब ठीक लगता है, वाहवाही होती है, तब तक लोग संतों के साथ होते हैं। परंतु जब दुरात्मा लोग संगठित होकर गड़बड़ पैदा कर देते हैं तो वे लोग खिसक जाते हैं। ऐसे लोग सुविधा और वाहवाही के भक्त होते हैं, संत के भक्त नहीं होते।

संत का भक्त तो वही है जो चाहे कैसी भी विपरीत परिस्थति आये, पर अपना भक्तिभाव नहीं छोड़ता। सुविधा के भक्त तो कब उलझ जायें, कब भाग जायें, पता नहीं परंतु जो निःस्वार्थ भक्त होता है वह अडिग रहता है, कभी फरियाद नहीं करता और दुर्बुद्धि निंदकों के चक्कर में नहीं आता। सच्चे भक्त तो संत के दर्शन, सत्संग और उनकी महिमा का गुणगान करते-करते कभी थकते ही नहीं। परंतु संत का संतत्व इन सबसे भी परे है। किसीकी निंदा अथवा विरोध से उनकी कोई हानि नहीं होती और किसीके द्वारा प्रशंसा करने से उन्हें कोई लाभ नहीं होता।

सच्चे संतों का आदर-पूजन जिनसे सहन नहीं होता, ऐसे ईर्ष्यालु लोगों ने ही पूरी ताकत से संतों का कुप्रचार किया है। संतों के व्यवहार को पाखंड कहकर उन्होंने ही धर्म के प्रचार का ठेका लिया है। ऐसे धर्म का ठेका लेकर, धर्म की जय बुलवानेवालों को पता ही नहीं है कि वे क्या कर रहे हैं ?

जब कबीरजी आये तब पंडों ने कहा : ''हम धर्म की जय कर रहे हैं।'' जब सुकरात आये तब राजा और अन्य लोगों ने कहा : ''हम धर्म की जय कर रहे हैं।'' जब नानकजी आये तब विरोधियों ने उपद्रव किया : ''नानकजी को शहर से बाहर निकाल दिया जाय, क्योंकि वे पाखंड कर रहे हैं। धर्म की जय तो हम कर रहे हैं।''

अनादिकाल से यही होता आया है। भले कितनी ही मुसीबतें आयीं, कितनी ही प्रतिकूलताएँ आयीं, सच्चे भक्तों-श्रद्धालुओं ने संतों की शरण नहीं छोड़ी। कबीरजी के साथ सलूका-मलूका, नानकजी के साथ बाला-मरदाना ऐसे ही श्रद्धालु शिष्य थे, जिनके नाम इतिहास में अमर हो गये।

धन्य है ऐसे शिष्यों को कि जो अलख पुरुष की आरसी के समान ब्रह्मवेत्ता संतों को श्रद्धा-भक्ति से निहारते हैं और उनके साथ अंत तक निभा पाते हैं। वे धनभागी हैं जो निंदा अथवा कुप्रचार के शिकार होकर अपनी शांति का घात नहीं करते। उन्हींके लिए यह कथन फलित होता है :

अलख पुरुष की आरसी, साधु का ही देह।
लखा जो चाहे अलख को, इन्हीं में तू लख लेह।।

सेवाधारियों व सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरूआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी।



वास्तविक कर्त्तव्य और सामाजिक कर्त्तव्य

[मुख्य कर्त्तव्य में लीन तुकारामजी महाराज]

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

ईश्वर को पाने के लिए आपको चाहे जो भी करना पड़े, वे सब प्रयास, वे सब सौदे सस्ते हैं। संसार को पाने के लिए यदि ईश्वर का त्याग करना पड़े तो सौदा महँगा है। ईश्वर को पाने के लिए यदि संसार की कचरापट्टी का त्याग करना पड़े तो कर देना चाहिए, क्योंकि यदि ईश्वर मिल गया तो संसार तो उसकी छायामात्र है। वह स्वयं ही पीछे-पीछे चला आयेगा। संसार की रजो-तमोगुणी वासनाओं को पोषने के लिए संसार के सुख से चिपके तो वह सुख टिकेगा नहीं और मुक्ति का सुख मिलेगा नहीं। फिर आप रोते रह जाओगे।

दो प्रकार के कर्त्तव्य होते हैं - एक होता है वास्तविक कर्त्तव्य और दूसरा होता है सामाजिक कर्त्तव्य। मनुष्य-जन्म मिला है तो मुक्ति पाना मनुष्य का मुख्य कर्त्तव्य है। जन्म-मरण से पार होना, पाप-ताप से पार होना, यह मनुष्य का मुख्य कर्त्तव्य है। दूसरा है गौण कर्त्तव्य अर्थात् सामाजिक या ऐहिक जिम्मेदारी। यदि आप सात फेरे फिरकर शादी करके आये हैं तो आपका ऐहिक कर्त्तव्य है पत्नी का पालन-पोषण करना। बच्चे को जन्म दिया है तो उसको पढ़ाना-लिखाना, यह आपकी ऐहिक जिम्मेदारी है।

जो मुख्य जिम्मेदारी को निभाने में लग जाता है, उसकी ऐहिक जिम्मेदारी अपने-आप पूरी होने लगती है। फिर भले प्रारंभ में उसे थोड़ा विरोध ही क्यों न सहना पड़े।

तुकारामजी महाराज शादी करके आये तो उनकी ऐहिक जिम्मेदारी तो थी कि कुछ भी करके कमायें और पत्नी का भरण-पोषण करें। वे ऐहिक जिम्मेदारी के फेरे फिरकर तो आये किंतु उनका मन आध्यात्मिक अथवा वास्तविक जिम्मेदारी की तरफ अधिक झुकता गया। अतः वे उसीको निभाने में पूर्ण रूप से संलग्न हो गये। नतीजा यह हुआ कि लोग उनकी निंदा करने लगे। फिर भी तुकारामजी महाराज ने निंदकों की परवाह नहीं की। उन्होंने सोचा कि 'चलो, मुख्य काम तो हो रहा है'। जब तुकारामजी महाराज पर निंदकों की बातों का कुछ असर न हुआ तो उन्होंने उनका मुंडन करवाकर, उनके सिर पर हल्दी व चूने का लेप करके, गधे पर बिठाया। इतने से भी जब निंदकों को संतोष नहीं हुआ तो उन्होंने बैंगन और गाजर का हार बनाकर तुकारामजी महाराज के गले में डाल दिया और गधे पर उलटा (अर्थात् पूँछ की ओर मुँह करके) बिठाकर पूरे गाँव में घुमाया।

फिर भी धन्य हैं तुकारामजी महाराज ! इतना होने पर भी वे अपने मुख्य कर्त्तव्य से नहीं डिगे। बाहर से तो बड़ा भारी अपमान दिख रहा है, किंतु अंदर से उनके चित्त पर इसका कोई असर नहीं हुआ। उनकी यह 'शोभायात्रा' घूमते-घूमते जब उनके घर के सामने आयी तो उनकी पत्नी जीजाई, जो उन्हें उठते-बैठते गालियाँ सुना देती थी, उसका भी हृदय पिघल गया। उसने तो उठाया डंडा और दौड़ी निंदकों के पीछे ! जीजाई का यह रूप देखकर सब भाग गये। उसने तुकारामजी को गधे पर से उतारा। फिर रोते-रोते बोल उठी :

''आपकी ऐसी हालत किसने की ?''

तुकारामजी बोले : ''रोती क्यों है ? दुःखी क्यों होती है ? आज तक मैं पूरा गाँव नहीं घूमा था, बेचारों ने गली-गली घुमा दिया। हजामत करवाने पैसा तो था नहीं, अपने खर्चे से उन्होंने मुण्डन भी करवा दिया। कितने अच्छे लोग थे ! सिर पर कहीं फोड़े-फुंसी न हों इसलिए उन बेचारों ने चूना और हल्दी भी लगा दी। हम रोज दाल खा-खाकर ऊब गये थे, गरीबी की वजह से दाल से ही

गुजारा करना पड़ता था। उन बेचारों ने बैंगन और गाजर का हार पहना दिया तो हमें ५-७ दिन के लिए सब्जी भी मिल गयी। आज का दिन कैसा शुभ है। तू दुःखी क्यों होती है ?''

यह है सात्त्विक सुख ! यह है वास्तविक कर्त्तव्य को निभाने का आनंद ! बाहर दुःख की बौछारें हो रही हैं, फिर भी चित्त में दुःख पैदा नहीं हो रहा है।

तुकारामजी महाराज भगवान के भजन के लिए एक पहाड़ी पर जाकर बैठ जाते और उनकी पत्नी किसीके घर का अनाज पीसती, तो किसीकी कुछ सेवा करती। फिर अपने घर आकर रोटी बनाती और पति-परमात्मा को भोजन देने पहाड़ी पर जाती। इस तरह उनका गुजारा चलता था।

एक दिन दोपहर के समय वह तुकारामजी को भोजन देने जा रही थी। एक तो भीषण गर्मी... दूसरे, दोपहर का समय और तीसरे, परिश्रम से थकी जीजाई। आज उसके क्रोध का कोई पार न रहा। रास्ते में वह विट्ठल को कोसती जा रही थी : ''ऐ विट्ठल ! तुझे और कोई नहीं मिला क्या ? मेरे पति के दिल में घुसकर बैठ गया है ? ऐ काला-कलूट ! तू बाहर से तो काला है ही, भीतर से भी काला है...'' क्रोध के आवेग में विट्ठल और तुकारामजी को कोसते-कोसते अपने पैरों को पटकते हुए जा रही है।

भगवान अपनी निंदा तो सह लेते हैं किंतु अपने प्यारे भक्त की निंदा उनसे सही नहीं जाती। प्रकृति कोपायमान हुई और जीजाई के पैर में एक बबूल का शूल चुभ गया। जीजाई वहीं पर गिर पड़ी। 'भोजन का समय हो गया और जीजाई अभी तक नहीं आयी, क्या बात है ?' - यह सोचकर तुकारामजी पहाड़ी से देखने लगे।

इधर तुकारामजी को भूख लगी और उधर भगवान विट्ठल की नींद खराब हुई कि 'मेरा भक्त भूख से व्याकुल है'। भगवान विट्ठल जीजाई के सामने प्रकट हो गये और बोले : ''उठ, जीजाई !''

जीजाई ने जैसे ही विट्ठल को देखा कि वह क्रोध से भड़क उठी और बरस पड़ी : ''तू ! विट्ठल !! इधर भी आ गया !!! तूने ही मेरा गृहस्थ जीवन बरबाद कर दिया है। जा, चला जा यहाँसे।''

विट्ठल तो क्यों जाने लगे ? जीजाई ने तो मुँह घुमा दिया। फिर भी वह क्या ? जिधर मुँह घुमाया उधर विट्ठल खड़े दिखाई दिये। अब तो जीजाई जिधर मुँह घुमाती जाती है, उधर-उधर विट्ठल प्रकट होते जाते हैं। आखिर थककर जीजाई ने आँखें बंद कर लीं, किंतु यह क्या ! भीतर भी विट्ठल ही दिखने लगे ! जीजाई फिर बड़बड़ाने लगी :

''तू भीतर कैसे घुस गया ? चल, निकल बाहर।''

इन्कार भी तो आमंत्रण देता है। लग गया जीजाई का ध्यान। मन शांत हो गया। उसे अपनी भूल का एहसास हुआ। वह रो-रोकर भगवान से माफी माँगने लगी : ''विट्ठल ! मैंने तुम्हें बहुत-से अपशब्द कह दिये। मुझे माफ कर दो।''

विट्ठल बोले : ''अरे, जीजाई ! रोती क्यों है ? तेरे सब अपराध माफ हैं। जो मुख्य कर्त्तव्य में लग जाते हैं, उनके गौण कर्त्तव्य मैं पूरे करता हूँ। तुम्हारे पतिदेव अपने मुख्य कर्त्तव्य के पालन में, ईश्वर को पाने में लगे हुए हैं, अतः उनके गौण कर्त्तव्य तो मुझे ही पूरे करने पड़ते हैं। जीजाई ! तू फिकर मत कर, उठ।''

विट्ठल ने जीजाई का हाथ पकड़कर उसे खड़ा किया और उसके पैर से शूल निकाला। भगवान के स्पर्श से उसकी सारी थकान भी दूर हो गयी।

जीजाई बोलती है : ''विट्ठल ! मुझे प्यास लगी है।''

यह सुनकर विट्ठल ने पास की चट्टान पर पत्थर दे मारा तो वहाँ से झरना फूट पड़ा। जीजाई ने पानी पीकर जब प्यास बुझा ली, तब विट्ठल बोले :

''जीजाई ! जल्दी करो। मेरा भक्त भूखा है।''

जीजाई और भगवान, दोनों पैदल ही पहाड़ी पर जाने लगे। तुकारामजी तो भूख से व्याकुल होकर दूर-दूर तक ताक ही रहे थे। अचानक देखा कि 'अरे ! अमावस्या की काली रात और मध्याह्नकाल के भुवनभास्कर एक साथ ! कहाँ जीजाई और कहाँ विट्ठल ! दोनों एक साथ कैसे ? मुझे कोई भ्रम तो नहीं हो गया ?' आँखें मसल-मसलकर तुकारामजी ने देखा कि 'मैं वास्तव में होश में तो हूँ न ?'

देखते-देखते दोनों तुकारामजी के पास पहुँच गये। उनके आते ही तुकारामजी ने भगवान से पहला प्रश्न यही किया :

''भगवान विट्ठल ! आप जीजाई को लेकर आये !''

विट्ठल ने सारी घटना बता दी। उन्होंने कहा :

''आज जीजाई के पैर में शूल चुभ गया था। देर हो रही थी, इसलिए मुझे आना पड़ा।''

तुकारामजी तो भगवान के साकार विग्रह को देखते ही भूख-प्यास भूल गये। तब भगवान ने कहा : ''खाओ, तुकाराम!''

खाते-खाते तुकारामजी कहते हैं : ''भगवन् ! जीजाई तो सदैव आपको कोसती रहती है, फिर भी आप उसके साथ कैसे ?''

''तुकाराम ! मेरी नजर जीजाई पर नहीं, तुम पर थी। मेरी नजर तो भक्त पर होती है और भक्त के नाते भक्त के सम्बन्धियों का कल्याण करना यह मेरा स्वभाव है।''

जो अपने मुख्य कर्त्तव्य को निभा लेता है, उसके गौण कर्त्तव्य का निर्वाह स्वयं भगवान की कृपा से हो ही जाता है। अतः ईश्वर की ओर जानेवालों को उनके कुटुंबी कोसें नहीं बल्कि सहयोग करें। इसी में भला है।

अपनी वर्त्तमान अवस्था चाहे कैसी भी हो, उसको सर्वोच्च मानने से ही आपके हृदय में आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान का अनायास उदय होने लगेगा। आत्म-साक्षात्कार को मीलों दूर की कोई चीज समझकर उसके पीछे दौड़ना नहीं है, चिंतित होना नहीं है। चिंता की गठरी उठाकर व्यथित होने की जरूरत नहीं है। जिस क्षण आप निश्चिंतता में गोता मारोगे, उसी क्षण आपका आत्मस्वरूप प्रकट हो जायेगा। अरे! प्रकट क्या होगा, आप स्वयं आत्मस्वरूप हो ही। अनात्मा को छोड़ दो तो आत्मस्वरूप तो हो ही।

(आश्रम की पुस्तक 'जीवन रसायन' से)

पर्व मांगल्य

स्कंद पुराण में श्राद्ध-महिमा

[श्राद्ध पक्ष - २२ सितम्बर से ७ अक्टूबर तक]

राजा रोहिताश्व ने मार्कण्डेयजी से प्रार्थना की :

'भगवन् ! मैं श्राद्धकल्प का यथार्थ रूप से श्रवण करना चाहता हूँ।'

मार्कण्डेयजी ने कहा : ''राजन् ! इसी विषय में आनर्तनरेश ने भर्तृयज्ञ से पूछा था। तब भर्तृयज्ञ ने कहा था :

राजन् ! विद्वान पुरुष को अमावस्या के दिन श्राद्ध अवश्य करना चाहिए। क्षुधा से क्षीण हुए पितर श्राद्धान्न की आशा से अमावस्या तिथि के आने की प्रतीक्षा करते रहते हैं। जो अमावस्या तिथि को जल या शाक से भी श्राद्ध करता है, उसके पितर तृप्त होते हैं और उसके समस्त पातकों का नाश हो जाता है।''

आनर्तनरेश बोले : ''ब्रह्मन् ! मरे हुए जीव तो अपने कर्मानुसार शुभाशुभ गति को प्राप्त होते हैं फिर श्राद्ध-काल में वे अपने पुत्र के घर कैसे पहुँच पाते हैं ?''

भर्तृयज्ञ : ''राजन् ! जो लोग यहाँ मरते हैं उनमें से कितने ही इस लोक में जन्म लेते हैं, कितने ही पुण्यात्मा स्वर्गलोक में स्थित होते हैं और कितने ही पापात्मा जीव यमलोक के निवासी हो जाते हैं। कुछ जीव भोगानुकूल शरीर धारण करके अपने किये हुए शुभ या अशुभ कर्म का उपभोग करते हैं।

राजन् ! यमलोक या स्वर्गलोक में रहनेवाले पितरों को भी तब तक भूख-प्यास अधिक होती है, जब तक कि वे माता या पिता से तीन पीढ़ी के

अंतर्गत रहते हैं। जब तक वे मातामह, प्रमातामह या वृद्धप्रमातामह और पिता, पितामह या प्रपितामह पद पर रहते हैं, तब तक श्राद्धभाग लेने के लिए उनमें भूख-प्यास की अधिकता होती है।

पितृलोक या देवलोक के पितर श्राद्धकाल में सूक्ष्म शरीर से श्राद्धीय ब्राह्मणों के शरीर में स्थित होकर श्राद्धभाग से तृप्त होते हैं। परंतु जो पितर कहीं शुभाशुभ भोग में स्थित हैं या जन्म ले चुके हैं, उनका भाग दिव्य पितर लेते हैं और जीव जहाँ जिस शरीर में होता है, वहाँ तदनुकूल भोगों की प्राप्ति कराकर उसे तृप्ति पहुँचाते हैं।

ये दिव्य पितर नित्य और सर्वज्ञ होते हैं। पितरों के उद्देश्य से सदा ही अन्न और जल का दान करते रहना चाहिए। जो नीच मानव पितरों के लिए अन्न और जल न देकर आप ही भोजन करता है या जल पीता है, वह पितरों का द्रोही है। उसके पितर स्वर्ग में अन्न और जल नहीं पाते हैं। अतः पितरों के लिए शक्ति के अनुसार अन्न और जल अवश्य देना चाहिए। श्राद्ध द्वारा तृप्त किये हुए पितर मनुष्य को मनोवांछित भोग प्रदान करते हैं।''

आनर्तनरेश : ''ब्रह्मन् ! श्राद्ध के लिए और भी तो नाना प्रकार के पवित्रतम काल हैं, फिर अमावस्या को ही विशेषरूप से श्राद्ध करने की बात क्यों कही गयी है ?''

भर्तृयज्ञ : ''राजन् ! यह सत्य है कि श्राद्ध के योग्य और भी बहुत से समय हैं। मन्वादि तिथि, युगादि तिथि, संक्रांतिकाल, व्यतीपात, चंद्रग्रहण तथा सूर्यग्रहण - इन सभी समयों में पितरों की तृप्ति के लिए श्राद्ध करना चाहिए। पुण्य तीर्थ, पुण्य मंदिर, श्राद्ध योग्य ब्राह्मण तथा श्राद्ध के योग्य उत्तम पदार्थ प्राप्त होने पर बुद्धिमान पुरुषों को बिना पर्व के भी श्राद्ध करना चाहिए। अमावस्या को विशेषरूप से श्राद्ध करने का आदेश दिया गया है इसका कारण है कि सूर्य की सहस्त्रों किरणों में जो सबसे प्रमुख है उसका नाम 'अमा' है। उस 'अमा' नामक प्रधान किरण के तेज से ही सूर्यदेव तीनों लोकों को प्रकाशित करते हैं। उसी 'अमा' में तिथि विशेष को चंद्रदेव निवास करते हैं, इसलिए उसका नाम अमावस्या है। यही कारण है कि अमावस्या प्रत्येक धर्मकार्य के लिए अक्षय फल देनेवाली बतायी गयी है। श्राद्धकर्म में तो इसका विशेष महत्त्व है ही।''

श्राद्ध की महिमा बताते हुए ब्रह्माजी ने कहा है :

'यदि मनुष्य पिता, पितामह और प्रपितामह के उद्देश्य से तथा मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामह के उद्देश्य से श्राद्ध-तर्पण करेंगे तो उतने से ही उनके पिता और माता से लेकर मुझ तक सभी पितर तृप्त हो जायेंगे।

जिस अन्न से मनुष्य अपने पितरों की तुष्टि के लिए श्रेष्ठ ब्राह्मणों को तृप्त करेगा और उसीसे भक्तिपूर्वक पितरों के निमित्त पिंडदान भी देगा, उससे पितरों को सनातन तृप्ति प्राप्त होगी।

अमावस्या के दिन वंशजों द्वारा श्राद्ध और पिंड पाकर पितरों को एक मास तक तृप्ति बनी रहेगी। सूर्यदेव के कन्या राशि पर स्थित रहते समय आश्विन कृष्णपक्ष (पितृपक्ष या महालय) में जो मनुष्य मृत्यु-तिथि पर पितरों के लिए श्राद्ध करेंगे, उनके उस श्राद्ध से पितरों को एक वर्ष तक तृप्ति बनी रहेगी।

उस समय शाक के द्वारा भी जो पितरों का श्राद्ध नहीं करेगा वह धनहीन चाण्डाल होगा। ऐसे व्यक्ति से जो बैठना, सोना, खाना, पीना, छुना-छुआना अथवा वार्तालाप आदि व्यवहार करेंगे वे भी महापापी माने जायेंगे। उनके यहाँ संतान की वृद्धि नहीं होगी। किसी प्रकार भी उन्हें सुख और धन-धान्य की प्राप्ति नहीं होगी।

यदि मनुष्य गयातीर्थ में जाकर एक बार भी श्राद्ध कर देंगे तो उसके प्रभाव से सभी पितर सदा के लिए तृप्त हो जायेंगे।'

राजन् ! ऐसा जानकर विज्ञ पुरुष को चाहिए कि पितरों को तृप्त करने की इच्छा रखकर वह उक्त समय में श्राद्ध अवश्य करे।

अगर पितरों को पितृपक्ष में श्राद्धान्न नहीं मिलता तो वे जब तक कन्या राशि में सूर्य स्थित रहता है, तब तक अपनी संतानों द्वारा किये गये श्राद्ध की प्रतीक्षा करते रहते हैं। उसके भी बीत जाने पर कुछ पितर तुला राशि के सूर्य तक पूरे कार्तिक मास में अपने वंशजों द्वारा किये जानेवाले श्राद्ध की राह देखते हैं। जब सूर्यदेव वृश्चिक राशि पर चले

जाते हैं, तब वे पितर दीन और निराश होकर अपने स्थान पर लौट जाते हैं। राजन् ! इस प्रकार पूरे दो मास तक भूख-प्यास से व्याकुल पितर वायुरुप में आकर घर के दरवाजे पर खड़े रहते हैं । अतः पितृपक्ष में श्राद्ध अवश्य करना चाहिए। विशेषतः तिल और जल की अंजलि देनी चाहिए।

जिन तिथियों में श्रद्धापूर्ण हृदय से स्नान करके पितरों के लिए दिया हुआ तिलमिश्रित जल भी उनके लिए अक्षय तृप्ति का साधन होता है, वे तिथियाँ हैं : आश्विन शुक्ल नवमी, कार्तिक की द्वादशी, माघ तथा भादों की तृतीया, फाल्गुन की अमावस्या, पौष की एकादशी, आषाढ़ की दशमी, माघ की सप्तमी, श्रावण कृष्णपक्ष की अष्टमी, आषाढ़-कार्तिक-फाल्गुन-चैत्र तथा ज्येष्ठ मास की पूर्णिमाएँ - ये मन्वंतर की आदि तिथियाँ कही गयी हैं । इन तिथियों में स्नान करके जो मनुष्य पितरों के उद्देश्य से तिल और कुशमिश्रित जल भी देता है, वह परम गति को प्राप्त होता है।

कार्तिक शुक्ल नवमी, वैशाख शुक्ल तृतीया, माघ मास की अमावस्या और श्रावण की तृतीया - ये क्रमशः सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग की आदि तिथियाँ हैं। ये स्नान, दान, जप, होम और पितृतर्पण आदि करने पर अक्षय पुण्य उत्पन्न करनेवाली और महान फल देनेवाली होती हैं।

जब सूर्य मेष अथवा तुला राशि पर जाते हैं, उस समय अक्षय पुण्यदायक 'विषुव' नामक योग होता है। जिस समय सूर्य मकर और कर्क राशि पर जाते हैं, उस समय 'अयन' नामक काल होता है। सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि पर जाना 'संक्रांति' कहलाता है । ये सब स्नान, दान, जप और होम आदि का महान फल देनेवाले हैं। इनमें दी हुई वस्तु का अक्षय पुण्य होता है।

(**टिप्पणी** : गीता के सातवें अध्याय का माहात्म्य पढ़कर पाठ किया जाय और फल पितरों को अर्पण किया जाये तो बड़ा पुण्य होता है। आश्रम से प्रकाशित श्रीमद्भगवद्गीता देखें। श्राद्ध की विधि आदि की संपूर्ण जानकारी आश्रम से प्रकाशित पुस्तक 'श्राद्ध-महिमा' में दी गयी है।)



भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी...

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

'श्रीरामचरितमानस' में आता है :

भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी।
बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी ॥

यदि तुम विदेश जाना चाहो तो तुम्हारे पास पासपोर्ट होगा तब वीजा मिलेगा । वीजा होगा तब टिकट मिलेगी । फिर तुम हवाईजहाज में बैठकर अमेरिका जा सकोगे । यदि नौकरी चाहिए तो प्रमाणपत्रों की जरूरत पड़ेगी। अगर व्यापार करना हो तब भी धन की जरूरत पड़ेगी। किंतु भक्ति में ऐसा नहीं है कि 'तुम इतनी योग्यता प्राप्त करो तब भक्ति कर सकोगे...' ।

तुम्हारे पास कोई योग्यता, कोई प्रमाणपत्र न हो तो भी तुम भक्ति जब चाहो कर सकते हो। ईश्वर का ऐश्वर्य इसीमें है कि वह तुम्हारी योग्यता देखकर तुम्हें स्वीकार नहीं करता वरन् स्वीकार करना उसका स्वभाव है, उसका ईश्वरत्व है। अगर तुम सोच लेते हो कि 'मैं इतने साल तक भक्ति करूँगा तब भगवान मिलेंगे...' समय-मर्यादा की अड़चन तुम्हारी ओर से है, ईश्वर की तरफ से नहीं हैं।

भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी।

जैसे, विभीषण आया तो सुग्रीव ने श्रीरामजी से कहा कि 'यह शत्रु का भाई है, अतः इसे स्वीकार नहीं करना चाहिए।' किंतु शत्रु का भाई है इसलिए उसे स्वीकार न करें तो ईश्वर का ईश्वरत्व किस बात का ? अगर भगवान केवल भक्तों को ही स्वीकारें और अभक्तों को न स्वीकारें तो कामी,

क्रोधी, पापी वगैरह कहाँ जायेंगे ?

श्रीरामजी ने कहा : 'मेरा तो प्रण है शरणागत के भय को हर लेना - **मम पन सरनागत भयहारी।** जिसे करोड़ों ब्राह्मणों की हत्या का पाप लगा हो, शरण में आने पर मैं उसे भी नहीं त्यागता। जीव मेरे सम्मुख होता है तो उसके करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं।'

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू।
आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं।
जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥
(श्रीरामचरित. सुंदरकांड : ४३.१)

ईश्वर से यह नहीं होता कि योग्य को ही स्वीकारें। वरन् जो भी उनका होना चाहता है, उसके लिए ईश्वर के द्वार सदा खुले हैं।

शर्त यह है कि हम यह न मानें कि 'हम पापी हैं... हमारे कर्म ऐसे हैं... हमको भगवान स्वीकार करेंगे कि नहीं ?' अपने कर्मों को याद करके अपने को कर्मों का कर्त्ता न मानो वरन् प्रभु को याद करके अपने को प्रभु का मानो और प्रभु को अपना मानो तो काम बन जायेगा...

पहली बात है कि **अपने को कर्म का कर्त्ता न मानें।** दूसरी बात है कि **कर्म में अपना स्वतंत्र ज्ञान नहीं होता।** कर्म को पता नहीं होता कि वह कर्म है। कर्म स्वयं जड़ है, आपकी भावना के अनुसार उसका परिणाम होता है। कर्म करके कुछ पा लूँगा ऐसा विचार किया तो कर्म करने पड़ेंगे। क्रिया से जो कुछ मिलेगा वह मेहनत करवायेगा और अंत में थका देगा। पर भाव से जो मिलेगा वह मेहनत नहीं करवायेगा वरन् प्रेम उभारेगा और थकान मिटायेगा तथा जीवन को रसमय बनायेगा।

'मैं इतने जप करूँगा... तब कहीं पवित्र होऊँगा और फिर भगवान मेरा जप स्वीकार करेंगे अथवा मैंने इतने अच्छे कर्म किये परंतु बीच में इतने बुरे कर्म किये इसलिए मेरा सब कुछ खो गया।' ऐसा सोचोगे तो ऐसा ही दिखेगा, ऐसा ही होगा।

प्रयत्न करना चाहिए कि शास्त्रविरुद्ध कर्म न हों परंतु स्मृति अपने कर्मों की नहीं, भगवान के स्वरूप की करनी चाहिए। भगवान ज्ञानस्वरूप हैं, भगवान चैतन्यस्वरूप हैं, भगवान आनंदस्वरूप हैं, भगवान हमारे परम हितैषी हैं, भगवान हमारे परम सुहृद हैं... - ऐसा मानने से भगवत्प्रीति बढ़ती जायेगी।

ईश्वर में, शास्त्र में, गुरु में तथा अपनी आत्मा में जितनी श्रद्धा होगी, जितनी दृढ़ता होगी, उतना ही बल बढ़ता जायेगा।

एक पंडितजी प्रतिदिन किसी गाँव में कथा करने जाते थे। उसी गाँव में एक ग्वालिन प्रतिदिन नदी पार से दूध बेचने आती थी। दूध बेचने के लिए जाते-जाते वह ग्वालिन कथा के एक-दो शब्द सुन लिया करती थी। एक बार कथा के ये शब्द उसके कान में पड़ गये कि **'रामनाम से तो पत्थर भी तर जाते हैं'।**

कहा गया है कि **विश्वासो फलदायकः।** 'विश्वास फलदायक होता है।'

ग्वालिन का विश्वास भी गजब का था। वह दूध बेचकर जब घर वापस जाने के लिए नदी तट पर आयी, तब वह सोचने लगी : 'जब रामनाम से पत्थर तक तैर सकते हैं तो मैं तो मनुष्य हूँ। मैं क्यों नहीं तैर सकती ? नाववाले को व्यर्थ में दो पैसे क्यों दूँ ?' ऐसा दृढ़निश्चय और विश्वास करके रामनाम लेते हुए उसने नदी में पैर रखा और चलकर नदी के उस पार पहुँच गयी ! अब वह प्रतिदिन दूध बेचने आती तो रामनाम जपते-जपते नदी पर चलकर ही आने लगी !

महीना पूरा हुआ। उसके पास थोड़े-से पैसे इकट्ठे हो गये। उसने सोचा कि जिन पंडितजी की कथा से मुझे इतना फायदा हुआ है, उन्हें एक बार भोजन तो करवा दूँ। उसने पंडितजी से अपने घर चलकर भोजन करने की प्रार्थना की। पंडितजी ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। समय और तिथि निश्चित हो गयी।

नियत दिन और समय पर ग्वालिन पंडितजी को लेने आयी। दोनों नदी के तट पर पहुँचे तो देखा कि नाव नहीं है। पंडितजी ने कहा :

''यहाँ तो कोई नाव ही नहीं दिखाई दे रही,

उस पार कैसे पहुँचेंगे ?''

ग्वालिन ने कहा : ''अरे, पंडितजी ! आप ही ने तो कहा था कि रामनाम से पत्थर तक तैर सकते हैं तो आपके लिए नदी को पार करना कौन-सी बड़ी बात है ? चलिये, मेरे साथ चले-चलिये।''

यह कहकर ग्वालिन तो बड़ी आसानी से पानी पर चलने लगी परंतु पंडितजी किनारे पर ही खड़े रह गये। तब उन्हें हुआ कि मैंने इतने शास्त्र पढ़े, कथाएँ की, किंतु शास्त्रों का सार, कथाओं का सार तो इस ग्वालिन ने पाया।

ग्वालिन ने तो केवल दो वचन ही सुने थे कि 'रामनाम से तो पत्थर भी तर जाते हैं'। उसने उन वचनों पर विश्वास किया तो पानी पर चलना उसके लिए आसान हो गया। ऐसे ही हमें भी शास्त्रवचनों, गुरुवचनों पर विश्वास हो जाय तो हम भी भवसागर से आसानी से पार हो सकते हैं। जरूरत है तो केवल अटल विश्वास की...

परिस्थितियों से हार न मानें, इनसे चिपके नहीं और इनसे घबरायें भी नहीं। तटस्थ हो जायें। अपने भगवत् तत्त्व के साथ एकाकार होकर परिस्थितियों को गुजरने दें। 'भगवान मेरे साथ हैं और मैं भगवान का हूँ' - यह विश्वास जितना पक्का करोगे भगवान उतने जल्दी प्रकट होंगे। **ईश्वर के रास्ते जाने का एक बार दृढ़ संकल्प कर लिया तो फिर उसको छोड़े नहीं।**

बरसात के दिनों में फालतू घास जल्दी उग जाती है परंतु गुलाब के फूल जहाँ-तहाँ नहीं उगते। गुलाब के फूल खिलाने हैं तो कलम लगानी पड़ती है, निराई-गुड़ाई करनी पड़ती है, खाद-पानी देना पड़ता है, देखभाल करनी पड़ती है तब गुलाब खिल पाता है।

ऐसे ही फालतू विचार जल्दी आ जाते हैं, व्यर्थ कर्म भी जल्दी हो जाते हैं किंतु श्रेष्ठ कर्म करने में दृढ़ता रखनी पड़ती है। श्रेष्ठ विचार के लिए सत्संग करना होता है। सत्संग से जो श्रेष्ठ विचार मिलें उन्हें पकड़े रखें, सुना-अनसुना न करें। जैसे, गुलाब की कलम लगाते हैं तो उसकी देखभाल करते हैं, ऐसे ही विचारों की कलम लग जाय तो उसकी सँभाल करनी चाहिए। बगीचे में तो फूल खिलते हैं, सुगंध देकर मुरझा जाते हैं परंतु यहाँ तो हृदय खिलेगा और परमात्मतत्त्व का अमिट अनुभव होने लगेगा।

तीसरी बात है कि कभी यह न समझें कि **'ईश्वर कहीं दूसरी जगह पर है... अभी नहीं है बाद में मिलेगा... यहाँ नहीं है, कहीं जाने के बाद मिलेगा...।'** नहीं, ईश्वर तो तुम्हारा आत्मा होकर बैठा है, वह सर्वत्र और सदा है। आरंभ में होता है कि 'वह कहीं है और मैं कहीं हूँ और मैं उसका हूँ'। जब भक्ति बढ़ती है तो भक्त कहता है कि 'मैं तेरा हूँ'। फिर भक्ति और बढ़ती है, सत्संग और शास्त्र विचार करता है तो 'मैं'पना मिट जाता है और वह कहने लगता है कि 'मैं वही हूँ, वह मैं हूँ'।

चौथी बात है कि **यह सदा याद रखें कि यह शरीर सदा नहीं रहेगा।** एक दिन श्मशान में जायेगा परंतु मेरी आत्मा परमात्मा का सनातन अंश है और सदा रहेगी। इस प्रकार की जो समझ है वह शरीर की ममता हटा देगी, शरीर से आसक्ति हटा देगी।

शरीर की आसक्ति रखने से आलस्य बढ़ता है, इंद्रियों में विलासिता आ जाती है, मन असंयमी हो जाता है और बुद्धि के दोष बढ़ जाते हैं।

'शरीर तो पंचभूतों का है' - ऐसी मान्यता दृढ़ हो जाये तो शरीर का आलस्य चला जाता है। मन की विलासिता और इंद्रियों का उच्छृंखलपना नियंत्रित हो जाता है और बुद्धि में समता आने लगती है।

देह को 'मैं' मानोगे तो भोग-वासना पीछा नहीं छोड़ेगी। सूक्ष्म शरीर को 'मैं' मानोगे तो विचार और सिद्धांत में पकड़ होगी। कारण शरीर को 'मैं' मानोगे तो अवस्था में पकड़ होगी परंतु सच्चिदानंद-स्वरूप परमात्मा में 'मैं' और 'मेरा'पन होगा तो हर हाल में खुश...।

फिर तो भगवान का भजन करते हो तब भी भगवान तुम्हारे और नहीं करते हो तब भी भगवान तुम्हारे हैं। मन नाचता है तब भी तुम भगवान के और

मन शांत रहता है तब भी तुम भगवान के हो जाते हो।

जैसे, पत्नी ससुराल में हो तब भी, मायके में हो या घर में हो, बाजार में हो तब भी पति की ही है। पति की सेवा करती है तब भी पति की है और किसी दिन सेवा नहीं करती तब भी पति की ही है। वैसे ही जीव भगवान का है। भजन होता है तब भी भगवान तुम्हारे हैं और नहीं होता है तब भी भगवान तुम्हारे ही रहते हैं।

जब तुमने सच्चे दिल से भगवान को अपना मान लिया तो वह तुम्हारा क्यों नहीं होगा ?

तुम तो एकमात्र उस भगवान का ही आश्रय लो। ईश्वर की ओर चलने में जहाँ सहयोग मिलता हो, उत्साह बढ़ता हो, वह जगह छोड़े नहीं और जहाँ ईश्वर से विमुख करनेवाला वातावरण हो वहाँ जाये नहीं।

'श्री योगवाशिष्ठ महारामायण' में आता है : ''हे रामजी ! यदि आत्मतत्त्व की जिज्ञासा में हाथ में ठीकरा ले चांडाल के घर से भिक्षा ग्रहण करे वह भी श्रेष्ठ है, पर मूर्खता से जीना व्यर्थ है।''

बड़े-बड़े ऐश्वर्य से भी वह अवस्था अच्छी है, क्योंकि बड़े-बड़े ऐश्वर्य भोगकर भी आखिर नरकों में जाना पड़ेगा।

सुख-सुविधाएँ, गाड़ी-बंगले आदि का कुछ भी मूल्य नहीं है। इनको पाने का यत्न करने में प्राणी अपना सारा समय-शक्ति गँवा देता है, जबकि भगवत् भाव का, भगवत् शांति का, भगवत् माधुर्य का जो सुख है वह यहाँ भी सुख देता है और अंत में सुखस्वरूप ईश्वर से मिला देता है। इसलिए प्रयत्न करके भगवत् भाव को, भगवत् ज्ञान को, भगवत् ध्यान को और भगवत् तत्त्व को आत्मसात् करना चाहिए।

...और यह कठिन नहीं है। 'कठिन है-कठिन है' सोचते हैं तो कठिन हो जाता है। अन्यथा यह कठिन नहीं है। देरवाला काम नहीं है। ऐसा नहीं है कि कोई चीज है और लाकर देनी पड़ेगी तो देर लगेगी अथवा बनाकर देनी पड़ेगी...। इसे न कहीं से लाना है, न बनाना है। यह तो हाजरा-हजूर है। इसे केवल जानना है, बस।

शास्त्र प्रसंग

स्त्रीपर्व

[महाभारत से संक्षिप्त]

महाभारत युद्ध में अपने १०० पुत्रों और सा- सेना का संहार हो जाने से धृतराष्ट्र बड़े दुःख हुए। पुत्र-शोक और चिंता में डूबे हुए धृतराष्ट्र शोक को शांत करने के लिए संजय ने कहा ''राजन् ! आप चिंता क्यों करते हैं ? शोक कोई बँटा तो सकता नहीं। मनुष्य को यथाशक्ति पहले ही ऐसा काम करना चाहिए, जिससे अप- पिछले कर्म के लिए उसे पछताना न पड़े। शोक करने से न तो धन मिलता है, न फल प्राप्त होत है, न ऐश्वर्य मिलता है और न परमात्मा की प्राप्ति होती है। ये शोक के आँसू आग की चिनगारियों के समान मनुष्यों को जलाया कर हैं। अतः आप बुद्धि के द्वारा मन को सावधान करके शोक और रोष को छोड़ दीजिए।''

इस प्रकार महात्मा संजय ने राजा धृतराष्ट्र को धैर्य बँधाया।

विदुरजी ने अपने अमृत के समान मी- वाक्यों से उन्हें सांत्वना देते हुए कहा : ''राजन् विचारपूर्वक मन को सावधान कीजिए। संसार सब जीवों की अंत में यही तो गति होनी है। जित- संचय हैं, उनका पर्यवसान क्षय में ही होगा, सा- भौतिक उन्नतियों का अंत पतन में ही होना है सारे संयोग वियोग में ही समाप्त होनेवाले हैं। इस प्रकार जीवन का अंत भी मरण में ही होना है। सम- आने पर कोई नहीं बच सकता। जो युद्ध नहीं करता वह भी मरता ही है और कभी-कभी युद्ध करनेवाल भी बच जाता है। मृत्यु आने पर तो कोई नहीं ज-

सकता। जितने प्राणी हैं आरंभ में वे नहीं थे और अंत में भी नहीं रहेंगे, केवल बीच में ही दिखाई देते हैं। इसलिए उनके लिए शोक करने की क्या आवश्यकता है ? शोक करने से मनुष्य न तो मरनेवाले के साथ जा सकता है और न उसे ला ही सकता है। इस प्रकार जब लोक की यही स्वाभविक स्थिति है तो आप किसलिए शोक करते हैं ?

जन्म से पूर्व ये सभी लोग अदृश्य थे और अब फिर अदृश्य हो गये हैं। न तो वे आपके थे न आप ही उनके हैं। फिर इसमें शोक करने का क्या कारण है ? अतः आप अपने मन को शांत करके शोक छोड़िए। संसार में बार-बार जन्म लेकर आप हजारों माता-पिता और स्त्री-पुत्रादि का संग कर चुके हैं, परंतु वास्तव में वे किसके हुए और किसके हम। शोक के हजारों स्थान हैं और भय के भी सैकड़ों स्थान हैं। किंतु इनका प्रभाव सर्वदा मूर्ख पुरुषों पर ही पड़ता है, बुद्धिमानों पर नहीं।

काल का तो न कोई प्रिय है न अप्रिय और न किसीके प्रति उसका उदासीन भाव ही है। वह तो सभीको मृत्यु की ओर खींचकर ले जाता है। निःसंदेह काल से पार पाना बड़ा ही कठिन है। यौवन, रूप, जीवन, धन का संग्रह, आरोग्य और प्रियजनों का सहवास - ये सभी अनित्य हैं। बुद्धिमान पुरुष को इनमें फँसना नहीं चाहिए। यद्यपि प्रियजनों का अभाव होने पर दुःख दबाता ही है, तथापि शोक करने से वह दूर नहीं होता, क्योंकि चिंतन करने पर दुःख कभी नहीं घटता, इससे तो वह और भी बढ़ जाता है।

जो लोग थोड़ी बुद्धिवाले होते हैं वे ही अनिष्ट की प्राप्ति और इष्ट का वियोग होने पर मानसिक दुःख से जला करते हैं। शोक करने से मनुष्य कर्त्तव्य-विमूढ़ हो जाता है तथा अर्थ, धर्म और कामरूप त्रिवर्ग से भी वंचित हो जाता है। भिन्न-भिन्न आर्थिक स्थितियों में पड़ने पर असंतोषी पुरुष तो घबरा जाते हैं, किंतु विचारवानों को सभी अवस्थाओं में संतोष रहता है।

मनुष्य को चाहिए कि मानसिक दुःख को विचार से और शारीरिक कष्ट को औषधियों से दूर करे। मनुष्य का पूर्वकृत कर्म उसके सोने पर सो जाता है, उठने पर उठ बैठता है और दौड़ने पर भी साथ लगा रहता है। वह जिस-जिस अवस्था में जैसा-जैसा भी शुभ या अशुभ कर्म करता है, उसी-उसी अवस्था में उसका फल भी पा लेता है। मनुष्य आप ही अपना बंधु है, आप ही अपना शत्रु है और आप ही अपने पाप-पुण्य का साक्षी है। वह शुभ कर्म से सुख पाता है और पाप से दुःख भोगता है। इस प्रकार सर्वदा किये हुए कर्म का ही फल मिलता है और स्वप्न की नाईं सब बदलता रहता है।

विदुरजी का महाराज धृतराष्ट्र के प्रति संसार के स्वरूप, उसकी भयंकरता और उससे छूटने के उपाय का वर्णन करना

राजा धृतराष्ट्र ने कहा : ''परम बुद्धिमान विदुरजी ! तुम्हारे शुभ सम्भाषण को सुनकर मेरा शोक नष्ट हो गया है। अभी मैं तुम्हारी सारगर्भित बातें और भी सुनना चाहता हूँ।''

विदुरजी बोले : ''महाराज ! विचार करने पर यह सारा जगत अनित्य ही जान पड़ता है। यह केले के खंभे के समान सारहीन है, इसमें सार कुछ भी नहीं है। मनुष्य जैसे नये या पुराने वस्त्र को उतारकर दूसरा वस्त्र पहन लेता है, उसी प्रकार वह नये-नये शरीर भी धारण करता रहता है। जीव अपने पूर्वकर्मों के अनुसार जन्म लेते हैं और फिर नष्ट भी हो जाते हैं। इस प्रकार जब लोक का स्वरूप स्वभाव से ही आगमापायी (आने-जानेवाला) है तो आप किसलिए शोक करते हैं। इस संसार में जो लोग बुद्धिमान, सत्त्वगुण से युक्त, सबका हित चाहनेवाले और प्राणियों के समागम को कर्मानुसार जाननेवाले हैं, वे ही परमगति प्राप्त करते हैं।''

राजा धृतराष्ट्र ने पूछा : ''विदुरजी ! संसार का स्वरूप बड़ा गहन है। अतः मैं यह सुनना चाहता हूँ कि इसे किस प्रकार जाना जा सकता है। सो तुम इसीका वर्णन करो।''

विदुरजी बोले : ''महाराज ! जब गर्भाशय में वीर्य और रज का संयोग होता है, तभीसे जीवों की क्रियाएँ दिखने लगती हैं। आरंभ में जीव कलिल

(वीर्य और रज के संयोग) में रहता है, फिर कुछ दिन बाद पाँचवाँ महीना बीतने पर वह चैतन्यस्वरूप से प्रकट होकर पिण्ड में निवास करने लगता है। इसके बाद वह गर्भस्थ पिण्ड सर्वांगपूर्ण हो जाता है। इस समय उसे मांस और रुधिर से भरे हुए अत्यन्त अपवित्र गर्भाशय में रहना पड़ता है। फिर वायु के वेग से उसके पैर ऊपर की ओर हो जाते हैं और सिर नीचे की ओर। इस स्थिति में योनिद्वार के समीप आ जाने से उसे बड़े दुःख सहने पड़ते हैं। फिर वह योनिमार्ग से पीड़ित होकर उससे बाहर आ जाता है और संसार में आकर अन्यान्य प्रकार के उपद्रवों का सामना करता है, अब यह जैसे-जैसे बढ़ने लगता है, वैसे-वैसे इसे नयी-नयी व्याधियाँ भी घेरने लगती हैं।

इस प्रकार अपने कर्मों से पीड़ित होकर यह जीवन व्यतीत करता रहता है। जिनमें आसक्ति होने से ही रस की प्रतीति होती है, वे विषय इसे घेरे रहते हैं तथा उनके कारण यह इन्द्रियरूप पाशों से बँधा रहता है। ऐसी स्थिति में इसे तरह-तरह के व्यसन घेर लेते हैं। उनसे बँध जाने पर तो इसे तृप्ति ही नहीं होती। उस समय भले-बुरे कर्म करने पर इसे उनका कुछ ज्ञान नहीं होता। केवल ध्याननिष्ठ पुरुष ही अपने चित्त को कुमार्ग में फँसने से बचा सकते हैं। साधारण जीव तो यमलोक के द्वार पर पहुँचकर भी उसे नहीं पहचान पाता। इतने में ही काल इसे मृत्यु के मुख में डाल देता है और यमदूत शरीर से बाहर खींच लेते हैं। इसे बोलने की शक्ति नहीं रहती। उस समय इसका जो कुछ पाप या पुण्य किया होता है, वह सामने आता है, किंतु देहबंधन में बँध जाने पर यह फिर अपने उद्धार का प्रयत्न नहीं करता।

हाय ! लोभ के पंजे में फँसकर संसार स्वयं ही ठगा जा रहा है। यह लोभ, क्रोध और भय में पागल होकर अपनी सुधि ही नहीं लेता। यदि यह कुलीन होता है तो अकुलीनों को हेयदृष्टि से देखता हुआ अपनी उस कुलीनता में ही मस्त रहता है और धनी होने पर धन के घमंड से भरकर निर्धनों की निंदा करता है। यह दूसरों को तो मूर्ख बताता है, किंतु अपनी ओर कभी नहीं देखता। इसी तरह दूसरों के दोषों की तो निंदा करता रहता है, किंतु अपने को काबू में रखने का कभी विचार भी नहीं करता। ज
बुद्धिमान और मूर्ख, धनी और निर्धन, कुलीन अ
अकुलीन तथा प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित - अ
श्मशानभूमि में जाकर वस्त्रहीन अवस्था में पर
हैं, तब किसी भी व्यक्ति को उनमें कोई ऐसा अं
दिखाई नहीं देता, जिससे वे उनके कुल या रू
की विशेषता का पता लगा सकें। जब मरने
पश्चात् सभी जीव समान भाव से पृथ्वी की गोद
सोते हैं तो ये मूर्ख एक-दूसरे को धोखा क्यों दे
हैं ? इस नाशवान लोक में जो पुरुष इस वेदोव
उपदेश को साक्षात् या किसीके द्वारा सुनकर ज
से ही धर्म का आचरण करता है, वह अवश्य पर
गति प्राप्त कर लेता है।''

राजा धृतराष्ट्र ने कहा : ''विदुर ! धर्म
इस गूढ़ रहस्य का ज्ञान बुद्धि से ही हो सकता है
अतः तुम मेरे आगे विस्तारपूर्वक इस बुद्धिम
को कहो।''

विदुरजी कहने लगे : ''राजन् ! भगवा
स्वयंभू को नमस्कार करके मैं इस संसाररूप गह
वन के उस स्वरूप का वर्णन करता हूँ जिसव
निरूपण महर्षियों ने किया है। एक ब्राह्मण किस
विशाल वन में जा रहा था। वह एक दुर्गम स्थान
जा पहुँचा। उसे सिंह, व्याघ्र, हाथी और रीछ आ
भयंकर जंतुओं से भरा देखकर उसका हृदय बहु
ही घबरा उठा, उसे रोमांच हो आया और मन
बड़ी उथल-पुथल होने लगी। उस वन में इधर
उधर दौड़कर उसने बहुत ढूँढ़ा कि कहीं को
सुरक्षित स्थान मिल जाय। परंतु वह न तो वन
निकलकर दूर ही जा सका और न उन जंगली जीव
से त्राण ही पा सका। इतने में ही उसने देखा कि व
भीषण वन सब ओर जाल से घिरा हुआ है। ए
अत्यन्त भयानक स्त्री ने उसे अपनी भुजाओं
घेर लिया है तथा पर्वत के समान ऊँचे पाँच सिरवा
नाग भी उसे सब ओर से घेरे हुए हैं। उस वन
बीच में झाड़-झंखाड़ों से भरा हुआ एक गहरा कुअ
था। वह ब्राह्मण इधर-उधर भटकता उसीमें गि
गया। किंतु लताजाल में फँसकर वह ऊपर को पै
और नीचे को सिर किये बीच में ही लटक गया।

इतने में ही कुएँ के भीतर उसे एक बड़ा भा
सर्प दिखायी दिया और ऊपर की ओर उस

किनारे पर एक विशालकाय हाथी दिखा। उसके शरीर का रंग सफेद और काला था तथा उसके छः मुख और बारह पैर थे। वह धीरे-धीरे उस कुएँ की ओर ही आ रहा था। कुएँ के किनारे पर जो वृक्ष था, उसकी शाखाओं पर तरह-तरह की मधुमक्खियों ने छत्ता बना रखा था। उससे मधु की कई धाराएँ गिर रही थीं। मधु तो स्वभाव से ही सब लोगों को प्रिय है। अतः वह कुएँ में लटका हुआ पुरुष इन मधु की धाराओं को ही पीता रहता था। इस संकट के समय भी मधु पीते-पीते उसकी तृष्णा शांत नहीं हुई। और न उसे अपने ऐसे जीवन के प्रति वैराग्य ही हुआ। जिस वृक्ष के सहारे वह लटका हुआ था, उसे रात-दिन काले और सफेद चूहे काट रहे थे। इस प्रकार इस स्थिति में उसे कई प्रकार के भयों ने घेर रखा था। वन की सीमा के पास हिंसक जंतुओं से और अत्यंत उग्ररूपा स्त्री से भय था, कुएँ के नीचे नाग से और ऊपर हाथी से आशंका थी, पाँचवाँ भय चूहों के काट देने पर वृक्ष से गिरने का था और छठा भय मधु के लोभ के कारण मधुमक्खियों से भी था। इस प्रकार संसार-सागर में पड़कर भी वह वहीं डटा हुआ था तथा जीवन की आशा बनी रहने से उसे उससे वैराग्य भी नहीं होता था।

महाराज ! मोक्षतत्त्व के विद्वानों ने यह एक दृष्टान्त कहा है। इसे समझकर धर्म का आचरण करने से मनुष्य परलोक में सुख पा सकता है। यह जो विशाल वन कहा गया है, वह यह विस्तृत संसार ही है। इसमें जो दुर्गम जंगल बताया है, वह इस संसार की ही गहनता है। इसमें जो बड़े-बड़े हिंस्र जीव बताये गये हैं, वे तरह-तरह की व्याधियाँ हैं तथा इसकी सीमा पर जो बड़े डील-डौलवाली स्त्री है वह वृद्धावस्था है, जो मनुष्य के रूप-रंग को बिगाड़ देती है। उस वन में जो कुआँ है, वह मनुष्यदेह है। उसमें नीचे की ओर जो नाग बैठा हुआ है, वह स्वयं काल ही है। वह समस्त देहधारियों को नष्ट कर देनेवाला और उनके सर्वस्व को हड़प जानेवाला है। कुएँ के भीतर जो लता है, जिसके तंतुओं में यह मनुष्य लटका हुआ है, वह इसके जीवन की आशा है तथा ऊपर की ओर जो छः मुँहवाला हाथी है वह संवत्सर है। छः ऋतुएँ उसके मुख हैं तथा बारह महीने पैर हैं। उस वृक्ष को जो चूहे काट रहे हैं, उन्हें रात-दिन कहा गया है। तथा मनुष्य की जो तरह-तरह की कामनाएँ हैं, वे मधुमक्खियाँ हैं। मक्खियों के छत्ते से जो मधु की धाराएँ चू रही हैं, उन्हें भोगों से प्राप्त होनेवाले रस समझो, जिनमें अधिकांश मनुष्य डूबे रहते हैं। बुद्धिमान लोग संसार-चक्र की गति को ऐसा ही समझते हैं। तभी वे वैराग्यरूपी तलवार से इसके पाशों को काटते हैं।''

धृतराष्ट्र ने कहा : ''विदुर ! तुम बड़े तत्त्वदर्शी हो। तुमने मुझे बड़ा सुंदर आख्यान सुनाया है। तुम्हारे अमृतमय वचनों को सुनकर मुझे बड़ा हर्ष होता है।''

विदुरजी बोले : ''महाराज ! सुनिये, अब मैं विस्तारपूर्वक आपको उस मार्ग का विवरण सुनाता हूँ, जिसे सुनकर बुद्धिमान लोग संसार के दुःखों से छूट जाते हैं। राजन् ! जिस प्रकार किसी लंबे रास्ते पर चलनेवाला पुरुष थक जाने पर बीच-बीच में विश्राम कर लेता है, उसी प्रकार अज्ञानी लोगों को इस संसारयात्रा में चलते हुए बीच-बीच में गर्भ में रहकर विश्राम करना होता है। इस संसार से मुक्त तो विवेकी पुरुष ही होते हैं। अतः शास्त्रज्ञों ने गर्भवास को मार्ग का रूपक दिया है और गहन संसार को वन बताया है। यही मनुष्यों तथा चराचर प्राणियों का संसारचक्र है। विवेकी पुरुष को इसमें आसक्त नहीं होना चाहिए।

मनुष्यों की जो प्रत्यक्ष और परोक्ष शारीरिक तथा मानसिक व्याधियाँ हैं, उन्हीं को बुद्धिमानों ने हिंस्र जीव बताया है। मंदमति पुरुष इन व्याधियों से तरह-तरह के क्लेश और आपत्तियाँ उठाने पर भी संसार से विरक्त नहीं होते। यदि किसी प्रकार मनुष्य इन व्याधियों के पंजे से निकल भी जाय तो अंत में इसे वृद्धावस्था तो घेर ही लेती है। इसीसे यह तरह-तरह के शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंधों से घिरकर मज्जा और मांसरूप कीचड़ से भरे हुए आश्रयहीन देहरूप गड्ढे में पड़ा रहता है। वर्ष, मास, पक्ष और दिन-रात की संधियाँ - ये क्रमशः इसके रूप और आयु का नाश किया करते हैं। ये सब काल के ही प्रतिनिधि हैं, इस बात को मूढ़ पुरुष नहीं जानते।

किंतु विद्वानों का कथन है कि प्राणियों का शरीर रथ के समान है, सत्त्व (सत्त्वगुणप्रधान बुद्धि) सारथि है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं और मन लगाम है। जो पुरुष स्वेच्छापूर्वक दौड़ते हुए उन घोड़ों के पीछे लगा रहता है, वह तो इस संसारचक्र में पहिये के समान घूमता रहता है। किंतु जो बुद्धिपूर्वक उन्हें अपने काबू में कर लेता है, उसे इस संसार में नहीं आना पड़ता।

अतः बुद्धिमान पुरुष को संसार की निवृत्ति का ही प्रयत्न करना चाहिए। इस ओर से लापरवाही नहीं करनी चाहिए। जो पुरुष इन्द्रियों को वश में रखता है, क्रोध और लोभ से छूटा हुआ है तथा संतुष्ट और सत्यवादी है, वह शांति प्राप्त करता है। मनुष्य को चाहिए कि अपने मन को काबू में करके ब्रह्मज्ञानरूप महौषधि प्राप्त करे और उसके द्वारा इस संसारदुःखरूप महारोग को नष्ट कर दे। इस दुःख से संयमी चित्त के द्वारा जैसा छुटकारा मिल सकता है वैसा पराक्रम, धन, मित्र या हितैषी- किसीकी भी सहायता से नहीं मिल सकता। इसलिए मनुष्य को दयाभाव में स्थित रहकर शील प्राप्त करना चाहिए। दम, त्याग और अप्रमाद - ये तीन परमात्मा के धाम में ले जानेवाले घोड़े हैं। जो पुरुष शीलरूप लगाम को पकड़कर इन घोड़ों से जुते हुए मनरूप रथ पर सवार रहता है, वह मृत्यु के भय से छूटकर ब्रह्मलोक में जाता है। जो व्यक्ति समस्त प्राणियों को अभयदान करता है, वह भगवान विष्णु के निर्विकार परमपद को प्राप्त होता है। अभयदान से पुरुष को जो फल प्राप्त होता है, वह हजारों यज्ञ और नित्यप्रति उपवास करने से भी नहीं मिल सकता। यह बात निर्विवाद है कि प्राणियों को अपने आत्मा से अधिक प्रिय कोई वस्तु नहीं है, क्योंकि मरण किसीको भी इष्ट नहीं है। इसलिए बुद्धिमान पुरुष को सभी जीवों पर दया करनी चाहिए। जो बुद्धिहीन पुरुष तरह-तरह के माया-मोह में फँसे हुए हैं और जिन्हें बुद्धि के जाल ने बाँध रखा है, वे भिन्न-भिन्न योनियों में भटकते रहते हैं। सूक्ष्मदृष्टि महापुरुष तो सनातन ब्रह्म को ही प्राप्त कर लेते हैं।'' (क्रमशः)



✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

गीतापाठ की महिमा

एक बार किसी पाठशाला के गुरुजी ने पाठ्यपुस्तक पढ़ाने के बाद विद्यार्थियों को श्रीमद्भगवद्गीता पढ़ाई।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया॥

इस श्लोक का अर्थ समझाते हुए गुरुजी ने कहा : ''ईश्वर सबके हृदय में है। उस ईश्वर को न जानकर जीव उसी तरह भटकता रहता है जैसे यंत्र पर बैठा हुआ व्यक्ति।

ईश्वर सर्वत्रं हैं, सबके हृदय के साक्षी हैं। उनका ध्यान करने से तन पवित्र होता है, मन मधुर होता है, बुद्धि शुद्ध होती है, जीवन धन्य होता है। वे धनभागी हैं जो ईश्वर को सर्वत्र जानते हैं, मानते हैं और अपने हृदय में उनकी शांति, माधुर्य व उनकी करुणा का प्रसाद पाते हैं।''

उन विद्यार्थियों में शामिल एक गरीब किसान के बेटे के शुद्ध हृदय में यह श्लोक गहरा उतर गया और वह बार-बार पठन-मनन करके इसका फायदा उठाता था। एक बार उसके पिता ने कहा :

''मेरे साथ खेत में काम करने के लिए चल।''

बेटा अपने पिता के साथ गया। वह उम्र में तो छोटा था फिर भी उसकी समझ बड़ी थी। उसने गुरुजी से ज्ञान पाया था कि भगवान सबके हृदय में हैं, वे सबके कर्मों को देखते हैं, सबके साक्षी हैं।

बाल्यकाल में सच्चा ज्ञान मिले, बाल्यकाल

से परमात्मा का ध्यान करे तो जल्दी कल्याण होता है।

जैसे, स्वच्छ सफेद कपड़ें पर रंग जल्दी लग जाता है, मैले कपड़े पर नहीं लगता, ऐसे ही शुद्ध हृदय के बालकों को ईश्वर का रंग जल्दी लगता है। किंतु जो लोग संसार में छल-कपट करके अपने हृदय को गंदा कर देते हैं उनको ईश्वर का रंग जल्दी नहीं लगता।

वह किसान अपने खेत में न जाकर पड़ोस के खेत में घुस गया और बेटे से बोला : ''तू चारों तरफ नजर रखना कि कोई आता तो नहीं है ? मैं गायों के लिए दूसरे के खेत से घास काट लेता हूँ। ज्यादा घास कट जायेगी तो उसे हम बेच देंगे।''

लड़का बेचारा क्या कहता ? थोड़ी देर बाद पिता ने पूछा : ''बेटा ! तू देख रहा है न कि कोई आता तो नहीं है ? कोई मुझे देखता तो नहीं है ?''

अब बालक को मौका मिल गया पिता को नम्रता से समझाने का। पिता ने बचपन में झूठे-कपटी, बेईमान बच्चों की दोस्ती की होगी इसलिए बुढ़ापे में भी झूठ-कपट, चोरी-बेईमानी का जीवन बिताकर अपने को नरक की ओर ले जाने का मार्ग बना रहा था। किंतु बेटे को बचपन से ही अच्छे विद्वान और श्रेष्ठ गुरुजी मिले जो संसार की विद्या के साथ-साथ गीता का ज्ञान भी समझाते थे।

वह गरीब विद्यार्थी भी गुरुजी की बातों को ध्यान से सुनकर गुरु के ज्ञान को अपना अनुभव बनाने में लग जाता था। वह सुबह सूर्योदय से पहले उठकर थोड़ी देर भगवान की शांति में डूब जाता था। ऐसे पवित्र हृदय के बालक को हुआ कि मेरे पिता तो गलत कार्य कर रहे हैं। मैं उनको मना कैसे करूँ ? परंतु जब पिता ने पूछा, तब बेटे को मौका मिल गया पिता का कल्याण करने का। बेटे ने कहा :

''पिताजी ! बाहर तो कोई नहीं देख रहा है। यहाँ आप और हम दो ही हैं, फिर भी कोई देख रहा है।''

पिता चौंका और पूछा : ''कौन देख रहा है ?''

बेटा : ''पिताजी ! यहाँ तो हम दोनों ही हैं। दूर-दूर तक कोई मनुष्य नहीं है, फिर भी कोई देख रहा है।''

बेटे की नम्रता ने पिता के दिल को पिघला दिया। पिता ने पूछा : ''बेटा ! जब हम दोनों ही हैं तो तीसरा कौन देख रहा है ?''

बेटा : ''पिताजी ! आपके और मेरे भीतर बैठा हुआ वह परमेश्वर देख रहा है। हम गलत कार्य कर रहे हैं, इसलिए आपके हृदय की धड़कन भी बढ़ गयी और मेरे हृदय की शांति भी भंग हो रही है। कोई नहीं देखता, फिर भी वह तो देखता है जो सबका आत्मा बनकर बैठा है और सबके हृदय में है।

पक्षी में चहचहाने की चेतना उसी ईश्वर की है। वृक्षों में रस खींचने की शक्ति भी उसी परमेश्वर की है। माँ में वात्सल्य-रस बरसानेवाला भी वही परमात्मा है। पिता में अनुशासन करने का सामर्थ्य उसी सर्वसत्ताधीश से आता है। हमारे हृदय की धड़कनें भी उसी हृदयेश्वर से चलती हैं। हम किसीका भला करते हैं तो वही भीतर से धन्यवाद और आनंद देता है और हम किसीका बुरा करते हैं तो वही हमें भीतर से टोकता है। जो भीतर से टोकता है, वही अभी हमें देख रहा है।''

पुत्र की बात सुनकर पिता के हाथ काँपने लगे। हाथ में से हँसिया गिर पड़ा। पिता ने पुत्र को अपने गले से लगा लिया और कहा : ''बेटा ! आज तूने मेरी आँखें खोल दीं। चार पैसे के घास की चोरी करके मैं भीतरवाले से विमुख हो रहा था। बेटा ! व्यवहार में तो तू मेरा बेटा है और मैं तेरा बाप हूँ, परंतु ज्ञान में तो तू मेरा बाप है। ऐसा ज्ञान तुझे किसने दिया ?''

बेटा : ''मेरे गुरुजी अपने सद्गुरु के पास जाते हैं और सद्गुरु के अनुभव को अपना अनुभव बनाने में लगे हैं और हमको भी उसी पवित्र रास्ते पर ले जा रहे हैं। यह ज्ञान मैंने उन्हींसे पाया है।''

उस बालक का पिता धनभागी हो गया। उसकी चोरी की पुरानी आदत बेटे के इन मधुर वचनों से छूट गयी और कुसंगी पिता सत्संगी हो गया !

जो बालक गीता पढ़ते हैं, वे तो धनभागी हैं ही, उनके माता-पिता भी धनभागी हैं कि उन्होंने ऐसी संस्कारी संतान को जन्म दिया है। आप स्वयं भी गीता पढ़ें, औरों को भी पढ़ायें...

सच्चा न्याय

[*प्रतिभाशाली बालक रमण*]

महाराष्ट्र में एक लड़का था। उसकी माँ बड़ी कुशल और सत्संगी थी। वह बच्चे को थोड़ा-बहुत ध्यान सिखाती थी। लड़का जब १४-१५ साल का हुआ, तब उसकी बुद्धि विलक्षण बन गयी।

चार डकैत थे। उन्होंने कहीं डाका डाला तो हीरे-जवाहरात से भरी अटैची मिल गयी। उसे सुरक्षित रखने के लिए चारों एक ईमानदार बुढ़िया के पास गये। अटैची देते हुए बुढ़िया से बोले :

''माताजी ! हम चारों मित्र व्यापार-धंधा करने निकले हैं। हमारे पास कुछ पूँजी है। यहाँ कोई जान-पहचान है नहीं। इस जोखिम को कहाँ साथ लेकर घूमें ? आप इसे रखो और जब हम चारों मिलकर एक साथ लेने के लिए आयें तब लौटा देना।''

बुढ़िया ने कहा : ''ठीक है।''

अटैची देकर चारों रवाना हुए, आगे गये तो एक चरवाहा दूध लेकर बेचने जा रहा था। इन लोगों को दूध पीने की इच्छा हुई। पास में कोई बर्तन तो था नहीं। तीन डकैतों ने अपने चौथे साथी को कहा : ''जाओ, वह बुढ़िया का घर दिख रहा है, वहाँसे बर्तन ले आओ। हम लोग यहाँ इंतजार करते हैं।''

डकैत बर्तन लेने चला गया। रास्ते में उसकी नीयत बिगड़ गयी। वह बुढ़िया के पास आकर बोला : ''माताजी ! हम लोगों ने विचार बदल दिया है। यहाँ नहीं रुकेंगे। आज ही दूसरे नगर में चले जायेंगे। अतः हमारी अटैची लौटा दो। मेरे तीन दोस्त सामने खड़े हैं। मुझे अटैची लेने भेजा है।''

बुढ़िया ने बाहर आकर उसके साथियों की तरफ देखा तो तीनों दूर खड़े हैं। बुढ़िया ने बात पक्की करने के लिए उनको इशारे से पूछा : ''इसको दे दूँ ?''

डकैतों को लगा कि 'माई पूछ रही है, इसको बर्तन दूँ ?' तीनों ने दूर से ही कह दिया : ''हाँ, हाँ, उसको दे दो।''

बुढ़िया घर में गयी। पिटारे से अटैची निकालकर उसे दे दी। वह चौथा डकैत अटैची लेकर दूसरे रास्ते से पलायन हो गया।

तीनों साथी काफी इंतजार करने के बाद बुढ़िया के पास पहुँचे। उन्हें पता चला कि चौथा साथी अटैची ले भागा है। अब तो वे बुढ़िया पर ही बिगड़े : ''तुमने एक आदमी को अटैची क्यों दे दी ?''

उलझी बात राजदरबाद में पहुँची।

राजा ने आदेश दिया : ''तुमने एक ही आदमी को अटैची दे दी, अब इन तीनों को भी अपना-अपना हिस्सा मिलना चाहिए। तेरी माल-मिल्कियत, जमीन-जायदाद जो कुछ भी हो उसे बेचकर इन लोगों का हिस्सा चुकाना पड़ेगा। यह हमारा फरमान है।''

बुढ़िया रोने लगी। विधवा थी। घर में छोटे बच्चे थे। कमानेवाला कोई था नहीं। सम्पत्ति नीलाम हो जायेगी तो गुजारा कैसे होगा ? वह अपने भाग्य को कोसती हुई, रोती-पीटती रास्ते से गुजर रही थी। १५ साल के रमण ने उसे देखा तो पूछने लगा :

''माताजी ! क्या हुआ ? क्यों रो रही हो ?''

बुढ़िया ने सारा किस्सा कह सुनाया। आखिर में बोली :

''क्या करूँ बेटे ? मेरी तकदीर ही फूटी है, वरना उनकी अटैची लेती ही क्यों ?''

रमण ने कहा : ''माताजी ! आपकी तकदीर का कसूर नहीं है, कसूर तो राजा की खोपड़ी का है।''

संयोगवश राजा गुप्तवेश में वहींसे गुजर रहा था। उसने सुन लिया और पास आकर पूछने लगा :

''क्या बात है ?''

''बात यह है कि नगर के राजा को न्याय करना नहीं आता। इस माताजी के मामले में गलत निर्णय दिया है।'' रमण निर्भयता से बोल गया।

राजा : ''अगर तू न्यायाधीश होता तो कैसा न्याय देता ?'' किशोर रमण की बात सुनकर राजा की उत्सुकता बढ़ रही थी।

रमण : ''राजा को न्याय करवाने की गरज होगी

तो मुझे दरबार में बुलायेंगे। फिर मैं न्याय दूँगा।''

दूसरे दिन राजा ने रमण को राजदरबार में बुलाया। पूरी सभा लोगों से खचाखच भरी थी। वह बुढ़िया माई और तीनों मित्र भी बुलाये गये थे। राजा ने पूरा मामला रमण को सौंप दिया।

रमण ने बुजुर्ग न्यायाधीश की अदा से मुकदमा चलाते हुए पहले बुढ़िया से पूछा :

''क्यों माताजी ! चार सज्जनों ने आपको अटैची सँभालने के लिए दी थी ?''

बुढ़िया : ''हाँ।''

रमण : ''चारों सज्जन मिलकर एक साथ अटैची लेने आयें तभी अटैची लौटाने के लिए कहा था ?''

''हाँ।''

रमण ने अब तीनों को कहा : ''अरे, तब तो झगड़े की कोई बात ही नहीं है। सद्गृहस्थो ! आपने ऐसा ही कहा था न कि हम चार मिलकर आयें तब हमें अटैची लौटा देना ?''

डकैत : ''हाँ, ठीक बात है। हमने इस माई से ऐसा ही तय किया था।''

रमण : ''ये माताजी तो अभी भी आपको आपकी अटैची लौटाने को तैयार हैं, मगर आप ही अपनी शर्त को भंग कर रहे हैं।''

''कैसे ?''

''आप चार साथी मिलकर आओ तो अभी आपको आपकी अमानत दिलवा देता हूँ। आप तो तीन ही हैं। चौथा कहाँ है ?''

''साहब ! वह तो... वह तो...''

''उसे बुलाकर लाओ। जब साथ में आओगे तभी आपको अटैची मिलेगी। नाहक में इन बेचारी माताजी को परेशान कर रहे हो।''

तीनों व्यक्ति मुँह लटकाये रवाना हो गये। सारी सभा दंग रह गयी। सच्चा न्याय करनेवाले प्रतिभासंपन्न बालक की युक्तियुक्त चतुराई देखकर राजा भी बड़ा प्रभावित हुआ।

प्रतिभा विकसित करने की कुंजी सीख लो। जरा-सी बात में खिन्न न होना, मन को स्वस्थ व शांत रखना, ऐसी पुस्तकें पढ़ना जो संयम और सदाचार बढ़ायें, परमात्मा का ध्यान करना और सत्पुरुषों का सत्संग करना - ये ऐसी कुंजियाँ हैं जिनके द्वारा तुम भी प्रतिभावान बन सकते हो। वही बालक रमण आगे चलकर महाराष्ट्र में मुख्य न्यायधीश बना और मरियाड़ा रमण के नाम से सुविख्यात हुआ।

*

हानिकारक और लाभदायक बातें

सात बातें बड़ी हानिकारक हैं :

(१) अधिक बोलना : अधिक न बोलें अपितु सारगर्भित और कम बोलें।

(२) व्यर्थ का भटकना : जो अधिक भटकता है, अधिक हँसी-मजाक करता है, उसको हानि होती है।

(३) अधिक शयन : जो अधिक सोता है, दिन में सोता है उसको भी बड़ी हानि होती है।

(४) अधिक भोजन : जो ठाँस-ठाँसकर खाता है, बार-बार खाता है और स्वाद के लिए भोजन करता है, उसका पाचनतंत्र खराब हो जाता है और वह आलसी बन जाता है।

(५) शृंगार : जो अपने शरीर को ज्यादा सजाता है, ज्यादा टीपटाप करता है, अभिनेताओं जैसी वेशभूषा पहनता है, वह असंयमी हो जाता है।

(६) हीन भावना : जो गरीब अपने को कोसता है कि मैं गरीब हूँ, मेरा कोई नहीं है, मैं कुछ नहीं कर सकता हूँ... ऐसा व्यक्ति विकास में पीछे रह जाता है।

(७) अहंकार : जो धनवान अपने धन का घमंड करता है या विद्वान होकर अपनी विद्वता का अहंकार करता है, वह भी जीवन में विशेष उन्नति नहीं कर पाता।

उपर्युक्त ७ बातें जीवन में बड़ा हानिकारक प्रभाव डालती हैं। इसके विपरीत यदि जीवन में निम्नलिखित ८ गुण हों तो वह बड़ा यशस्वी हो जाता है : (१) शांत स्वभाव (२) उत्साह (३) सत्यनिष्ठा (४) धैर्य (५) सहनशक्ति (६) नम्रता (७) समता (८) साहस। इन ८ गुणों को धारण करनेवाला जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफल होता है।



एकादशी माहात्म्य

[पद्मा एकादशी : १७ सितम्बर २००२]

युधिष्ठिर ने पूछा : केशव ! कृपया यह बताइये कि भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष में जो एकादशी होती है, उसका क्या नाम है, उसके देवता कौन हैं और कैसी विधि है ?

भगवान श्रीकृष्ण बोले : राजन् ! इस विषय में मैं तुम्हें आश्चर्यजनक कथा सुनाता हूँ, जिसे ब्रह्माजी ने महात्मा नारद से कहा था।

नारदजी ने पूछा : चतुर्मुख ! आपको नमस्कार है ! मैं भगवान विष्णु की आराधना के लिए आपके मुख से यह सुनना चाहता हूँ कि भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष में कौन-सी एकादशी होती है ?

ब्रह्माजी ने कहा : मुनिश्रेष्ठ ! तुमने बहुत उत्तम बात पूछी है। क्यों न हो, वैष्णव जो ठहरे ! भादों के शुक्लपक्ष की एकादशी 'पद्मा' के नाम से विख्यात है। उस दिन भगवान हृषीकेश की पूजा होती है। यह उत्तम व्रत अवश्य करने योग्य है। सूर्यवंश में मान्धाता नामक एक चक्रवर्ती, सत्यप्रतिज्ञ और प्रतापी राजर्षि हो गये हैं। वे अपने औरस पुत्रों की भाँति धर्मपूर्वक प्रजा का पालन किया करते थे। उनके राज्य में अकाल नहीं पड़ता था, मानसिक चिंताएँ नहीं सताती थीं और व्याधियों का प्रकोप भी नहीं होता था। उनकी प्रजा निर्भय तथा धन-धान्य से समृद्ध थी। महाराज के कोष में केवल न्यायोपार्जित धन का ही संग्रह था। उनके राज्य में समस्त वर्णों और आश्रमों के लोग अपने-अपने धर्म में लगे रहते थे। मान्धाता के राज्य की भूमि कामधेनु के समान फल देनेवाली थी। उनके राज्यकाल में प्रजा को बहुत सुख प्राप्त होता था।

एक समय किसी कर्म का फलभोग प्राप्त होने पर राजा के राज्य में तीन वर्षों तक वर्षा नहीं हुई। इससे उनकी प्रजा भूख से पीड़ित हो नष्ट होने लगी। तब सम्पूर्ण प्रजा ने महाराज के पास आकर इस प्रकार कहा :

प्रजा बोली : नृपश्रेष्ठ ! आपको प्रजा की बात सुननी चाहिए। पुराणों में मनीषी पुरुषों ने जल को 'नार' कहा है। वह 'नार' ही भगवान का 'अयन' (निवास-स्थान) है, इसलिए वे 'नारायण' कहलाते हैं। नारायणस्वरूप भगवान विष्णु सर्वत्र व्यापकरूप में विराजमान हैं। वे ही मेघस्वरूप होकर वर्षा करते हैं, वर्षा से अन्न पैदा होता है और अन्न से प्रजा जीवन धारण करती है। नृपश्रेष्ठ ! इस समय अन्न के बिना प्रजा का नाश हो रहा है, अतः ऐसा कोई उपाय कीजिये, जिससे हमारे योगक्षेम का निर्वाह हो।

राजा ने कहा : आप लोगों का कथन सत्य है, क्योंकि अन्न को ब्रह्म कहा गया है। अन्न से प्राणी उत्पन्न होते हैं और अन्न से ही जगत जीवन धारण करता है। लोक में बहुधा ऐसा सुना जाता है तथा पुराण में भी बहुत विस्तार के साथ ऐसा वर्णन है कि राजाओं के अत्याचार से प्रजा को पीड़ा होती है, किंतु जब मैं बुद्धि से विचार करता हूँ तो मुझे अपना किया हुआ कोई अपराध नहीं दिखाई देता। फिर भी मैं प्रजा का हित करने के लिए पूर्ण प्रयत्न करूँगा।

ऐसा निश्चय करके राजा मान्धाता इने-गिने व्यक्तियों को साथ ले, विधाता को प्रणाम करके सघन वन की ओर चल दिये। वहाँ जाकर मुख्य-मुख्य मुनियों और तपस्वियों के आश्रमों पर घूमते फिरे। एक दिन उन्हें ब्रह्मपुत्र अंगिरा ऋषि के दर्शन हुए। उन पर दृष्टि पड़ते ही राजा हर्ष में भरकर अपने वाहन से उतर पड़े और इन्द्रियों को वश में रखते हुए दोनों हाथ जोड़कर उन्होंने मुनि के चरणों में प्रणाम किया। मुनि ने भी 'स्वस्ति' कहकर राजा

का अभिनन्दन किया और उनके राज्य के सातों अंगों की कुशलता पूछी। राजा ने अपनी कुशलता बताकर मुनि के स्वास्थ्य का समाचार पूछा। मुनि ने राजा को आसन और अर्घ्य दिया। उन्हें ग्रहण करके जब वे मुनि के समीप बैठे तो मुनि ने राजा से आगमन का कारण पूछा।

राजा ने कहा : भगवन्! मैं धर्मानुकूल प्रणाली से पृथ्वी का पालन कर रहा था। फिर भी मेरे राज्य में वर्षा का अभाव हो गया। इसका क्या कारण है इस बात को मैं नहीं जानता।

ऋषि बोले : राजन्! सब युगों में उत्तम यह सत्ययुग है। इसमें सब लोग परमात्मा के चिंतन में लगे रहते हैं तथा इस समय धर्म अपने चारों चरणों से युक्त होता हैं। इस युग में केवल ब्राह्मण ही तपस्वी होते हैं, दूसरे लोग नहीं। किंतु महाराज! तुम्हारे राज्य में एक शूद्र तपस्या करता है, इसी कारण मेघ पानी नहीं बरसाते। तुम इसके प्रतिकार का यत्न करो, जिससे यह अनावृष्टि का दोष शांत हो जाय।

राजा ने कहा : मुनिवर! एक तो वह तपस्या में लगा है और दूसरे, वह निरपराध है। अतः मैं उसका अनिष्ट नहीं करूँगा। आप उक्त दोष को शांत करनेवाले किसी धर्म का उपदेश कीजिये।

ऋषि बोले : राजन्! यदि ऐसी बात है तो एकादशी का व्रत करो। भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष में जो 'पद्मा' नाम से विख्यात एकादशी होती है, उसके व्रत के प्रभाव से निश्चय ही उत्तम वृष्टि होगी। नरेश! तुम अपनी प्रजा और परिजनों के साथ इसका व्रत करो।

ऋषि के ये वचन सुनकर राजा अपने घर लौट आये। उन्होंने चारों वर्णों की समस्त प्रजा के साथ भादों के शुक्लपक्ष की 'पद्मा एकादशी' का व्रत किया। इस प्रकार व्रत करने पर मेघ पानी बरसाने लगे। पृथ्वी जल से आप्लावित हो गयी और हरी-भरी खेती से सुशोभित होने लगी। उस व्रत के प्रभाव से सब लोग सुखी हो गये।'

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : राजन्! इस कारण इस उत्तम व्रत का अनुष्ठान अवश्य करना चाहिए। 'पद्मा एकादशी' के दिन जल से भरे हुए घड़े को वस्त्र से ढँककर दही और चावल के साथ ब्राह्मण को दान देना चाहिए, साथ ही छाता और जूता भी देना चाहिए। दान करते समय निम्नांकित मंत्र का उच्चारण करना चाहिए :

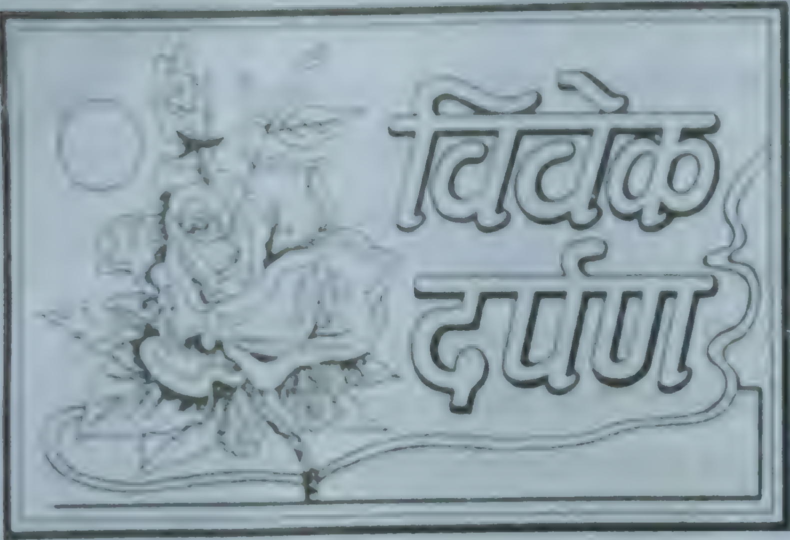
नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंज्ञक ॥
अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव।
भुक्तिमुक्तिप्रदश्चैव लोकानां सुखदायकः ॥

'बुधवार और श्रवण नक्षत्र के योग से युक्त द्वादशी के दिन बुद्धश्रवण नाम धारण करनेवाले भगवान गोविन्द! आपको नमस्कार है... नमस्कार है! मेरी पापराशि का नाश करके आप मुझे सब प्रकार के सुख प्रदान करें। आप पुण्यात्माजनों को भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले तथा सुखदायक हैं।' **(पद्म पु. उ. खंड : ५९.३८-३९)**

राजन्! इसके पढ़ने और सुनने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। [*'पद्म पुराण' से*]

शीत-उष्ण, सुख-दुःख, अनुकूलता-प्रतिकूलता आदि द्वन्द्वों से जो विचलित नहीं होता, आकर्षित नहीं होता वह जितेन्द्रिय पुरुष हर क्षेत्र में सफल होता है। आपमें जितनी जितेन्द्रियता होगी उतना आपमें प्रभाव आयेगा। जितनी जितेन्द्रियता होगी उतनी आंतरिक सुख पाने की शक्ति आयेगी। जितनी आंतरिक शक्ति होगी उतना आप निष्फिकर होकर जियेंगे, निर्द्वन्द्व होकर जियेंगे, निर्बंध होकर जियेंगे। इसका मतलब यह नहीं है कि आपके सामने द्वन्द्व आयेंगे ही नहीं। सर्दी आयेगी, गर्मी आयेगी, मान आयेगा, अपमान आयेगा, यश आयेगा, अपयश आयेगा परंतु पहले जो तिनके की तरह हिलडुल रहे थे, सूखे पत्ते की तरह झरझरा रहे थे वह अब नहीं होगा, अगर आपमें जितेन्द्रियता आ गयी तो।

(आश्रम की पुस्तक 'जीवन विकास' से)



फिल्मों का दुष्प्रभाव

देश में आये दिन घटित होनेवाली असामाजिक घटनाओं का कारण क्या है ? जो भारतवासी पहले सृजनात्मक कार्य में संलग्न होते थे, वे अब विध्वंसक कृत्य में क्यों रुचि ले रहे हैं ? लोगों का नैतिक स्तर क्यों गिरता जा रहा है ?

राष्ट्र के विज्ञजनों, कर्णधारों को इन चिंताजनक प्रश्नों का समाधान ढूँढ़ना चाहिए अन्यथा भविष्य में हमें बड़ी गंभीर परिस्थितियों का सामना करना पड़ सकता है।

अनेक कारणों के अलावा टी.वी. चैनलों, फिल्मों व अन्य प्रचार साधनों की भी इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका है। आज एक साधारण आदमी भी इन प्रचार साधनों से प्रभावित है । इसके दुष्परिणामों ने बालमानस को भी अछूता नहीं छोड़ा है। शिवपुरी (म. प्र.) से ६५ कि. मी. की दूरी पर स्थित अरोरा गाँव की एक घटित घटना है : आजकल खुलेआम दिखायी जानेवाली टी.वी., फिल्मों से प्रेरणा पाकर १६ वर्षीय मनोज और १३ वर्षीय रामनिवास ने अपने मालिक के पुत्र शानु का अपहरण करके उसके पिता से धन की माँग की और शानु की हत्या कर दी। १७ जनवरी २००२ को शानु का मृतशरीर मिला । दोनों किशोरों ने पुलिस को आत्मसमर्पण किया और अपराध कबूल किया । उन्होंने स्वयं यह स्वीकार किया कि यह प्रेरणा उन्होंने फिल्म देखकर पायी थी । प्रसिद्ध विद्वान डॉ. कीनो फेरियानी ने लिखा है : 'निरन्तर २० वर्ष तक मैंने अपराध, मनोविज्ञान तथा बाल मनोविज्ञान का अध्ययन किया है और हजारों बार मुझे इस कष्ट-भरे सत्य को स्वीकार करने के लिए मजबूर होना पड़ा है कि ८०% बच्चों को अपराधी मनोवृत्तिवाला बनने से बचाया जा सकता है, यदि उनके माँ-बाप समय रहते उन्हें अच्छी शिक्षा, ज्ञान, ऊँची विचारधारा से परिचय करवाकर उन्हें वीरता, देशभक्ति, मानव-कल्याण का पाठ पढ़ाते। इस प्रकार उनके जीवन का समूचा रूप बदल सकता था।'

राष्ट्र के नवनिर्माण में सहयोग करें। ऐसे प्रचार साधनों का बहिष्कार करें जो देश के भावी कर्णधारों को, आपके नन्हे-मुन्नों को तबाह करने पर तुले हैं।

याद रखें - बच्चे देश की सम्पत्ति हैं, उन्हें ऐसा वातावरण उपलब्ध करायें जिससे वे भविष्य में आपके व देश के लिए उपयोगी सिद्ध हों। कहीं ऐसा न हो कि आपके बच्चे आपके व समाज के लिए मुसीबत बन जायें । माता-पिता, सरकार व देश के कर्णधारों का यह नैतिक दायित्व है कि वे युवापीढ़ी को कुप्रवृत्तियों से बचाने के लिए उचित कदम उठायें। गलत बातें सोचकर तथा सिनेमा के कुप्रभाव का शिकार होकर युवा पीढ़ी जीते-जी नर्क का दुःख भोगने पर विवश हो रही है।

पुरुषार्थ यही है कि संतजनों का संग करना और बोधरूपी कलम और विचाररूपी स्याही से सत्शास्त्रों के अर्थ को हृदयरूपी पत्र पर लिखना । जब ऐसे पुरुषार्थ करके लिखोगे तब संसाररूपी जाल में न गिरोगे । अपने पुरुषार्थ के बिना परम पद की प्राप्ति नहीं होती । जैसे कोई अमृत के निकट बैठा हो तो पान किये बिना अमर नहीं होता, वैसे ही अमृत के भी अमृत अन्तर्यामी के पास बैठकर भी यदि विवेक-वैराग्य जगाकर इस आत्मरस का पान नहीं करते तब तक अमर आनन्द की प्राप्ति नहीं होती।

(आश्रम की पुस्तक 'पुरुषार्थ परमदेव' से)



परवल

वर्ष के कुछ ही महीनों में दिखनेवाली सब्जी परवल को सभी सब्जियों में सबसे अच्छा माना गया है। आयुर्वेद में एकमात्र परवल को ही बारहों महीने में सदा पथ्य के रूप में स्वीकार किया गया है क्योंकि परवल गुण में हलके, पाचक, गरम, स्वादिष्ट, हृदय के लिये हितकर, वीर्यवर्धक, जठराग्निवर्धक, स्निग्धतावर्धक, पौष्टिक, विकृत कफ को बाहर निकालनेवाला और त्रिदोषनाशक है। यह सर्दी, खाँसी, बुखार, कृमि, रक्तदोष, जीर्ण ज्वर, पित्त के ज्वर और रक्ताल्पता को दूर करता है।

परवल के दो प्रकार हैं : मीठे और कड़वे। सब्जी के लिए सदैव मीठे, कोमल बीजवाले और सफेद गूदेवाले परवल का उपयोग किया जाता है। जो परवल ऊपर से पीले तथा कड़क बीजवाले हो जाते हैं, उनकी सब्जी अच्छी नहीं मानी जाती।

कड़वे परवल का प्रयोग केवल औषधि के रूप में होता है। कड़वे परवल हलके, रुक्ष, गरम वीर्य, रुचिकर्त्ता, भूखवर्धक, पाचनकर्त्ता, तृषाशामक, त्रिदोषनाशक, पित्तसारक, अनुलोमक, रक्तशोधक, पीड़ाशामक, घाव को मिटानेवाला, अरुचि, मंदाग्नि, यकृतविकार, उदररोग, बवासीर, कृमि, रक्तपित्त, सूजन, खाँसी, कोढ़, पित्तज्वर, जीर्णज्वर और कमजोरीनाशक हैं।

✻ *औषधि-प्रयोग* ✻

डंठल के साथ मीठे परवल के ६ ग्राम पत्ते व ३ ग्राम सोंठ के काढ़े में शहद डालकर सुबह-शाम पीने से कफ सरलता से निकल जाता है।

घी अथवा तेल में बनायी गयी परवल की सब्जी का प्रतिदिन सेवन करने से हृदय रोग में लाभ होता है।

परवल के टुकड़ों को १६ गुने पानी में उबालें। उबालते समय उनमें सोंठ, पीपरामूल, लेंडीपीपर, काली मिर्च, जीरा व नमक डालें। चौथाई भाग शेष रह जाने पर सुबह-शाम दो बार पियें। इससे आमदोष में लाभ होता है तथा शक्ति बढ़ती है।

घी अथवा तेल में बनायी गयी परवल की सब्जी के सेवन से वीर्यशुद्धि में लाभ होता है तथा वजन बढ़ता है।

रक्त-विकार के मरीज को प्रतिदिन धनिया, जीरा, काली मिर्च और हल्दी डालकर घी में बनायी गयी परवल की सब्जी का सेवन करना चाहिए।

कड़वे परवल के पत्तों अथवा परवल के टुकड़ों का काढ़ा बारंबार रोगी को पिलाने से उसके शरीर में व्याप्त जहर वमन द्वारा बाहर निकल जाता है।

परवल के पत्ते, नीम के छाल, गुडुच व कुटकी को समभाग में लेकर काढ़ा बनायें। यह काढ़ा पित्त-कफ प्रधान अम्लपित्त, शूल, भ्रम, अरुचि, अग्निमांद्य, दाह, ज्वर तथा वमन में लाभदायक है।

✻ **विशेष :** गर्म तासीरवालों के लिए परवल का अधिक सेवन हानिकारक है। यदि इसके सेवन से कोई तकलीफ हुई हो तो सूखी धनिया अथवा धनिया-जीरे का चूर्ण घी-मिश्री में मिलाकर चाटें अथवा हरी धनिया का रस पियें।

ज्वर, चेचक (शीतला), मलेरिया, दुष्ट व्रण, रक्तपित्त, उपदंश जैसे रोगों में मीठे परवल की अपेक्षा कड़वे परवल के पत्तों का काढ़ा अथवा उसकी जड़ का चूर्ण अधिक लाभदायक होता है।

साँईं श्री लीलाशाहजी उपचार केन्द्र,
संत श्री आसारामजी आश्रम, जहाँगीरपुरा, वरियाव रोड, सूरत।

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य ११९वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया सितम्बर २००२ के अंत तक अपना नया पता भेज दें।



जीवनोपयोगी सूत्र

❋ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❋

❋ जीवन की शोभा और ऊँचाई आवश्यकता-पूर्ति और वासना-निवृत्ति में है। मनुष्य में एक होती है वासना से प्रेरित चेष्टा और दूसरी होती है आवश्यकता की पूर्ति। इच्छाओं को सुनियंत्रित करके निवृत्त करने से जीवन चमकता है और आवश्यकता की सहज में ही पूर्ति होती है।

❋ जीवन में यदि सही दिशा नहीं तो जीवन बोझिल हो जाता है, परिवार और समाज के लिए शाप बन जाता है, लोगों को आतंक व मार काट की कगार पर पहुँचानेवाला, हिंसक और चरित्रहीन बन जाता है।

❋ जीवन का लक्ष्य है शांति, मुक्ति, आवश्यकता-पूर्ति और इच्छा की निवृत्ति। यदि इच्छा-निवृत्ति की दिशा नहीं मिली तो इच्छाएँ आगे बढ़कर आदमी को ही दबोच लेती हैं।

❋ साधक को कैसा जीवन-जीना, क्या नियम लेना, किन कारणों से पतन होता है, किन कारणों से वह भगवान और गुरुओं से दूर हो जाता है और किन कारणों से भगवद् तत्त्व के नजदीक आ जाता है - इस प्रकार का अध्ययन, चिंतन, बीती बात का सिंहावलोकन व उन्नति के लिए नये संकल्प करने चाहिए।

❋ 'आत्मा क्या है, परमात्मा क्या है ? जगत क्या है, मैं कौन हूँ ?' इसका श्रवण करो, मनन तथा निदिध्यासन करो और अंततः उस तत्त्व का साक्षात्कार करो। यही वेदान्त की रीति है।

❋ जैसे, उपयोगी पत्थर, लोहे का टुकड़ा या अन्य वस्तुओं को हम सँभालते हैं, वैसे ही कर्तव्य-कर्म करता हुआ ईश्वर का भक्त स्वयं प्रभु के लिए उपयोगी बन जाता है, उसे फलाकांक्षा की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। अंतर्यामी ईश्वर स्वयं उसकी सँभाल लेते हैं। समाज और प्रकृति उसकी सेवा में सजग रहते हैं। ऐसी दशा में निष्काम कर्मवीर को इच्छा करने की क्या आवश्यकता ? वह तो सत्यकर्म की रीतियों पर चलकर स्वयं को योग्य बनाता है। फल की इच्छा से उसका क्या सरोकार ?

❋ किसीके दिल को ठेस न पहुँचे, किसीका कहीं कुछ बुरा न हो, कोई हानि न हो, इसका ध्यान रखते हुए जो कर्म किया जाता है वह कर्म यज्ञ है, पूजा है, उपासना है। ऐसा कर्म करनेवाला साधक ही परमात्मा के समग्र रूप का साक्षात्कार कर सकता है।

❋ श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार पुजारी वह है, जो पूजा तो भगवान की करता है, पर मंदिर या मन-मंदिर में नहीं। उसकी पूजा न तो मूर्तिपूजा है और न ही मानस-पूजा। वह तो अपने कर्मों के द्वारा भगवान की पूजा करता है। वह निष्काम कर्म करता है और वह भी ईश्वरार्पण भाव से।

❋ गीता में समाधि से भी श्रेष्ठ एक अन्य वस्तु वर्णित है - 'समत्व'। समाधि के बाद भी पतन हो सकता है, भक्त की भावना बदल सकती है, परंतु साधक यदि एक बार समता के सिंहासन पर आरूढ़ हो जाता है तो फिर वहाँसे उसका पतन नहीं हो सकता।

❋ शक्ति की उपासना सामर्थ्य-प्रदायिनी है। ज्ञान की समझ शांतिदात्री है।

❋ आओ मेरे प्यारे साधको ! अपनी ऐहिक और पारमार्थिक उन्नति के इच्छुको ! आ जाओ। तुम यशस्वी बनो। तुम संयमी बनो। तुम तेजस्वी बनो। तुम अपना और अपने पूर्वजों का नाम रोशन करो। तुम अपने और अपने कुल में आनेवाले वंशजों के मार्गदर्शक बनो - तुम ऐसे महान आत्मा बनो।

❋



बापूजी ने मुझे नया जीवन दिया

मैंने पहली बार बापूजी के दर्शन 'गुरु पूर्णिमा महोत्सव-२०००' पर अमदावाद आश्रम में किये। तबसे लेकर आज तक मेरे अंदर गंदे, भद्दे विचार नहीं आते, मेरा मन अच्छे कर्मों में लगता है। पहले मुझे बार-बार गुस्सा आता था, अब संयम से काम लेता हूँ। पहले चोरी-बेईमानी से नहीं डरता था। अब पाप-पुण्य के बारे में सोचता हूँ। पहले मैं पान-मसाले के नशे का आदी था लेकिन अब तो बस बापू को याद करके सब नशे छोड़ चुका हूँ। बापू के आश्रम में जाने के बाद से ही ऐसा लगता है जैसे सारे रोग अब मुझसे नाता तोड़ चुके हैं। बापू की कुछ पुस्तकें जैसे - जीवन-झाँकी, यौवन-सुरक्षा, नशे से सावधान, योगयात्रा पढ़ने के बाद इन पुस्तकों को बार-बार पढ़ने को मन करता है। सच्चाई यह है कि बापू के दर्शनमात्र से ही मैं आज अपने-आपको संतुष्ट मानता हूँ। मुझे बापू के दर्शनमात्र से ही नया जीवन मिला है।

- चंद्रवीर बंशीधर यादव, भांडुप, मुंबई.

*

भूले-भटकों को दिखाये राह : 'ऋषि प्रसाद'

मैं 'ऋषि प्रसाद' का सदस्य हूँ। इस पत्रिका का सदस्य बनने से पहले मेरा जीवन बड़ा घृणित था। बुरी संगत में आकर मैंने अपना यौवनरूपी धन व्यर्थ बहा दिया। इसमें केवल मेरा ही दोष नहीं है बल्कि आज का प्रदूषित वातावरण ही ऐसा है कि जिसमें युवावर्ग अक्सर भटक जाता है। युवावर्ग को उचित मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है।

'ऋषि प्रसाद' में आनेवाले **'युवा जागृति संदेश'** शीर्षक लेख से प्रभावित होकर मैंने ब्रह्मचर्य-पालन करने का निर्णय ले लिया है। अब मैं प्रतिदिन सुबह- शाम रामनाम जपता हूँ।

आपके द्वारा प्रकाशित 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका देश में असंख्य भूले-भटके व्यक्तियों को सही रास्ते पर लाने का कार्य सरलता से करती है। इसकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी कम है।

- विजय 'स्टार', रणवां की ढाणी, चूरू (राज.).

संस्था समाचार

अमदावाद (गुज.) : पूज्यश्री २० जुलाई से १९ अगस्त तक अमदावाद आश्रम में रहे । पूरे एक माह तक पूज्यपाद बापूजी के पावन सान्निध्य में ध्यान व भक्तिमय वातावरण में भक्तगण सराबोर होते रहे । देश के विभिन्न भागों से आये साधकों ने सामूहिक मौन जप-अनुष्ठान भी किये । देवशयनी एकादशी के बाद से वातावरण में व्याप्त दिव्य स्पंदन... चतुर्मास... उसमें भी श्रावण का महीना... और आत्मारामी सद्गुरुदेव का प्रत्यक्ष सान्निध्य व मार्गदर्शन... लाभान्वित साधकगण धन्य-धन्य हो उठे । वर्षों की मनमुखी साधना से जो शांति, तृप्ति और संतुष्टि न मिली वह इन दिनों पूज्यश्री के साधना-संकेत व सान्निध्य से सहज में ही मिल गयी । स्वास्थ्य में निखार, मन में प्रसन्नता, बुद्धि में स्थिरता और आध्यात्मिक ऊँचाइयों की खबरें पाकर निहाल हुए साधक-भक्तगण । अंततः जीवन-संग्राम के लिए शक्ति, स्फूर्ति तथा नयी समझ व दिशा प्राप्त कर वे अपने घरों की ओर लौटे ।

बड़ौदा (गुज.) : २० अगस्त को सद्गुरुदेव बील आश्रम (बड़ौदा, गुज.) पहुँचे, जहाँ २२ अगस्त तक दो दिवसीय श्रावणी पूर्णिमा व रक्षाबंधन महोत्सव सम्पन्न हुआ । पूज्यश्री ने साधना में सफलता की अनेकों कुंजियाँ बतायीं । त्राटक (बाह्यधारणा) की विधि व उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए ब्रह्मनिष्ठ बापूजी ने बताया कि इससे एकाग्रता व स्मरणशक्ति बढ़ती है । लौकिक कार्यों में भी सफलता मिलती है । दृष्टि प्रभावशाली बनती है । दीपज्योति, ॐ, स्वस्तिक, गुरु या भगवन्मूर्ति त्राटक के लिए उपयुक्त साधन हैं ।

नर्मदा किनारे एकांत कुटीर में त्रिदिवसीय निवास के बाद पूज्यश्री ने २५ अगस्त को विडियो फोन के द्वारा अमेरिका में सत्संग व दीक्षार्थियों को दीक्षा दी । उल्लेखनीय है कि अमेरिका में श्री सुरेशानंदजी के सत्संग की धूम मच गयी थी । सभीने मंत्रदीक्षा के लिए आग्रह किया था ।

२६ अगस्त की शाम को पूज्यश्री ने मालसर (गुज.) की एकांत रमणीय कुटिया से सूरत आश्रम के लिए प्रस्थान किया ।

प्रेम में अपनत्व होता है, निःस्वार्थता होती है, विश्वास होता है, विनम्रता होती है और त्याग होता है । सच पूछो तो प्रेम ही परमात्मा है और ऐसे परम प्रेमस्वरूप, परम प्रेमास्पद श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव है- जन्माष्टमी । श्रीकृष्ण जेल में जन्मे हैं । वे आनंदकंद, सच्चिदानंद जेल में प्रकटे हैं । आनंद जेल में प्रकट तो हो सकता है परंतु आनंद का विस्तार जेल में नहीं हो सकता । जब तक यशोदा के घर नहीं जाता, आनंद प्रेममय नहीं हो पाता । योगी समाधि करते हैं एकांत में, जेल जैसी जगह में आनंद प्रकट तो होता है परंतु समाधि टूटी तो आनंद गया । आनंद प्रेम से बढ़ता है, माधुर्य से विकसित होता है । श्रीकृष्ण के जीवन में सामर्थ्य है, माधुर्य है, प्रेम है । जितना सामर्थ्य उतना ही अधिक माधुर्य, उतना ही अधिक शुद्ध प्रेम है श्रीकृष्ण के पास ।

पैसों से प्रेम करोगे तो लोभी बनायेगा, पद से प्रेम करोगे तो अहंकारी बनायेगा, परिवार से प्रेम करोगे तो मोही बनायेगा परंतु प्राणिमात्र के प्रति समभाववाला प्रेम रहेगा, शुद्ध प्रेम रहेगा तो वह नित्य नवीन रस का अनुभव करवा देगा ।

(आश्रम की पुस्तक 'श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी' से)

पूज्य बापूजी के आगामी कार्यक्रम

(१) प्रांतिज (गुज.) : १४ से १६ सितम्बर २००२. फोन : (०२७७०) ३०८५०, ३०८५१.

(२) मेहसाना आश्रम (गुज.) : १७ सित. प्रातः १० से १२ बजे तक । फोन : (०२७६२) ४९४२२.

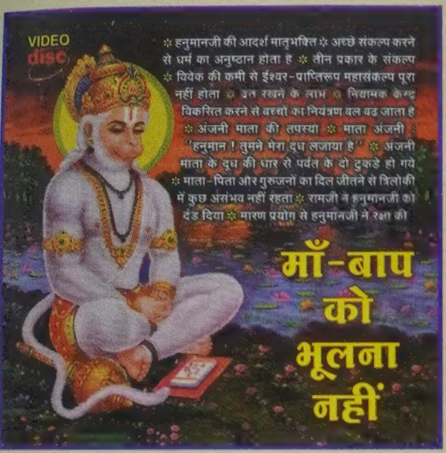
(३) कलोल आश्रम (गुज.) : १७ सित. शाम ३ से ५ बजे तक । फोन : (०२७६४) २७९९५.

(४) गाजियाबाद (उ.प्र.) : २० से २२ सितम्बर. कमला नेहरू नगर मैदान, हापुड़ चुंगी के पास । फोन : (०१२०) ४८७०८७०, ४८७०४९०.

(५) रतलाम (म.प्र.) : १२ से १५ अक्टूबर, विद्यार्थी सर्वांगीण उत्थान शिविर (पंजीकरण 'पहले आओ पहले पाओ' के आधार पर) तथा १७ से २१ अक्टूबर, ध्यान योग साधना शिविर । मांगल्य मंदिर, इन्डस्ट्रियल एरिया । फोन : (०७४१२) ६०७२२, ६०५४०, ६०२०८.

पूनम दर्शन : १९ सितम्बर अमदावाद आश्रम व २१ सितम्बर गाजियाबाद में ।

पूज्य बापूजी के सत्संग-अमृतवचनों की ५ नयी विडियो सी.डी.



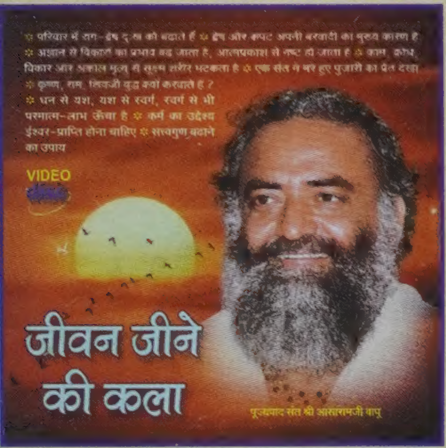
माता-पिता और गुरुजनों का दिल जीतने से त्रिलोकी में कुछ असंभव नहीं रहता।



आकाश गंगाओं से भी पार जो सोऽहम् स्वरूप है वही आखिरी मंजिल है।



गीता का ज्ञान रखनेवाला अपना कार्य उत्तम प्रकार से कर लेता है।



धन से यश, यश से स्वर्ग, स्वर्ग से भी परमात्म-लाभ ऊँचा है।

मनीऑर्डर/डी.डी. भेजकर रजिस्टर्ड पोस्ट पार्सल से भी प्राप्त कर सकते हैं।

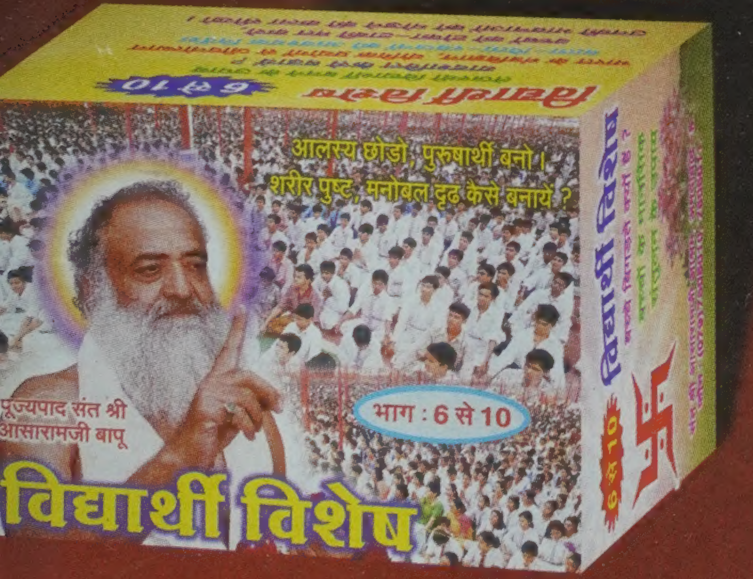
५ सी.डी. का मूल्य
डाकखर्च सहित : मात्र रु. ३५०/-

✻ कैसेट विभाग ✻
संत श्री आसारामजी महिला उत्थान आश्रम,
साबरमती, अमदावाद-५.



सुख-दुःख आना बड़ी बात नहीं, उनसे असंग रहना बड़ी बात है, ऊँची तपस्या है।

तेजस्वी विद्यार्थी बनने हेतु पूज्यश्री की अमृतवाणी की ५ नयी कैसेटें

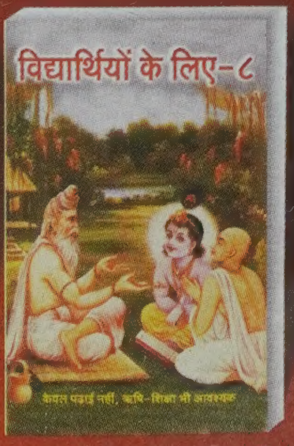


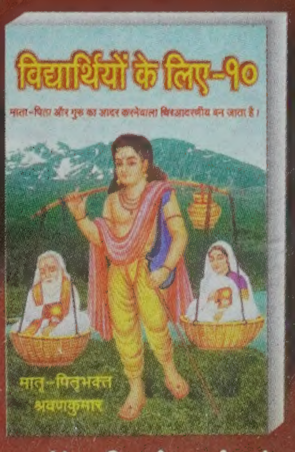
विद्यार्थी विशेष

माता-पिता-स्वजनों को आवश्यक निर्देश
बच्चों को टोका-टाकी मत करो,
उनकी भावनाओं को मोड़ने की कला सीखो।
बच्चों के मानसिक संतुलन के उपाय

५ ऑडियो कैसेट का मूल्य रु. १४०/-
(डाकखर्च सहित)









भाग 6 से 10



सभी संत श्री आसारामजी आश्रमों, श्री योग वेदांत सेवा समितियों और साधक-परिवारों के सेवा केन्द्रों पर उपलब्ध।



बड़ौदा में आयोजित 'नारियली पूर्णिमा' के निमित्त
पूज्य गुरुवर के सत्संग-दर्शन हेतु
देश-विदेश से आये श्रद्धालु भक्तों का मेला देखते ही बनत

वास्तविक आनंद, सच्चा सुख कौन नहीं चाहता ? बापूजी का सत्संग इस मूलभूत माँग को पूर्ण करने की कुंजी है। सत्संग पंडाल कितना भी बढ़ाओ, छोटा पड़ ही जाता है।

R.N.I. NO. 48873/91 REGISTERED. NO. GAMC/1132/2002. LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENSE NO. 207. POSTING FROM AHMEDABAD 2-10 OF EV
BYCULLA STG. WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO. 236 REGD NO. TECH/47 833/MBI/2002 POSTING FROM MUMBAI 9 & 10th OF EVERY MONTH.
DELHI REGD. NO. DL-11513/2002 WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO.-U(C) 232/2002 POSTING FROM DELHI 10-11 OF EVERY MONTH.